सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों
एवं शिक्षाओं
का
प्रतिपादक
मासिक

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 37; अंक : 3
जून 2004

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- मन बुद्धि प्रकृति में सदा विद्यमान रहते हैं (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 6
- भजन – भूपेन्द्र 'अंकुश' 9
- सतसंग प्रभाव – कृष्ण कुमार पाण्डेय 10
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति – कुमारी रुक्मणि वर्मा 13
- तूने सच्चा रास्ता बता दिया – वेदप्रकाश शर्मा 21
- प्रयाग कुम्भ मेला में श्री रामनरेश पर कृपा – केशव देव उपाध्याय 22
- समर्पण गीत – राजेश कुमार 30
- हठ योग का हठी : योगी संसार सिंह – गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ... 31
- परम ऋषि कपिल मुनि 32
- धर्म ग्रन्थ हमारे प्रत्यक्ष देवता – डा० रामचरण जी महेन्द्र 34
- क्षमा कर दो – राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) 38
- स्वास्थ्य चर्चा 39

एक प्रति	: रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	: रु. 100-00
द्विवार्षिक	: रु. 190-00
आजीवन	: रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37
अंक 03

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जून
2004

जीवेम शरदः शतं

ओ३म तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

शुक्लयजुर्वेद ३६/२४

देवता आदि सम्पूर्ण जगत का हित करने वाले और सबके नेत्ररूप वे तेजोमय भगवान सूर्य पूर्व दिशा में उदित हो रहे हैं। उनके प्रसाद से हम सौ वर्षों तक देखते रहें, सौ वर्षों तक जीते रहें सौ वर्षों तक सुनते रहें, सौ वर्षों तक हममें बोलने की शक्ति रहे तथा सौ वर्षों तक हम कभी दीन–दशा को प्राप्त न हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षों से भी अधिक काल तक हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं अदीन बने रहें—हम कभी दीन न हों।

अमृतकण

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/२०)

जिस प्रकार आकाश को चमड़े की भाँति लपेटना मनुष्य के लिए सर्वथा असम्भव है, उसी प्रकार परमात्मा को बिना जाने दुःख का अन्त नहीं हो सकता।

* * *

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले।
संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः।।

(विवेक चूड़ामणि/५६७)

जैसे दूध में मिलकर दूध, तैल में मिलकर तेल और जल में मिलकर जल एक ही हो जाते हैं, वैसे ही आत्मज्ञानी मुनि आत्मा में लीन होने पर आत्मस्वरूप ही हो जाता है।

* * *

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्रः नाकृतं भुज्यते क्वचित्।।

—महाभारत

शुभ कर्म करने से सुख और पाप कर्म करने से दुःख मिलता है। अपना किया हुआ कर्म ही सब जगह फल देता है। बिना कर्म किए कोई फल नहीं भोगा जा सकता।

* * *

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यास्तिष्ठति स बान्धवः।।

—चाणक्य

रोगी होने पर, दुःख विपत्ति पड़ने पर, अकाल पड़ने पर, शत्रु से संकट उपस्थित होने पर, किसी मुकदमे आदि में फँस जाने पर गवाह या सहायक के रूप में राजसभा में और मृत्यु होने पर जो श्मशान तक साथ देता है वही बन्धु है।

मन बुद्धि प्रकृति में सदा विद्यमान रहते हैं

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! मैंने तुम्हें कई बार पहले भी समझाया था कि प्रकृति के अंश होने के कारण मन बुद्धि हमेशा प्रकृति में विद्यमान रहा करते हैं। योगी कैवल्यमुक्ति पा जाये तब भी मन बुद्धि प्रकृति में ही रहेंगे। किन्तु ये साधिकार न होने से जन्म मरण के कारण नहीं बनते हैं। योग दर्शन में एक सूत्र आया है—**'कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टम् तदन्य साधारणत्वात्'** अर्थात् कृतार्थ भक्ति के प्रति—कृत आत्म साक्षात्कार के प्रति मन बुद्धि का सम्बन्ध हट जाने पर भी अन्यों के लिये प्रकृति में विद्यमान रहने के कारण नष्ट नहीं होते। मैं तुम्हें कई बार अपने गुरु भाई ब्र० गोपालानन्द जी महाराज का उदाहरण दिया करता हूँ। उनकी हमेशा वृत्ति बनी रहती थी कि योगियों से नई—नई विद्या सीख ली जाये। इसी लक्ष्य से एक बार उनके मन में आया कि गुरू नानक देव जी से बलाकर्षण प्राणायाम सीख ली जाये। वे ध्यानयोग में अवस्थित हो गये और सूक्ष्म शरीर से गुरू नानक के पास पहुँच गये। वे एक सुन्दर उद्यान में आसन पर विराजमान थे। इन्होंने उनसे बलाकर्षण प्राणायाम सीखने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने इस प्राणायाम को बता तो दिया किन्तु साथ में यह भी कहा तुम इसे अपने गुरूदेव से पूछकर के ही करना। ब्र० गोपालानन्द जी ने कहीं में भूल न जाऊँ इस भय से भी प्रभु जी से बिना पूछे ही इसे कर लिया। इस प्राणायाम के करने के फलस्वरूप उनका शरीर जगह—जगह से फटने लगा। काफी परेशानी होने लगी। अन्ततः वे श्री प्रभु जी के पास जाकर रोने लगे और कहने लगे—प्रभुजी ! पता नहीं यह मुझे क्या हो गया है। श्री प्रभुजी ने अनजान से बनते हुये गोपालानन्द जी से कहा—गोपाला नन्द ! लगता है तुमने कोई प्राणायाम किया है किन्तु दुष्परिणाम मिला है। इस प्राणायाम को तो गुरूनानक देव भली भाँति जानते हैं तुम उन्हीं से इसके निराकरण का उपाय पूछ लो। इस पर क्षमा याचना माँगते हुये ब्र० गोपालानन्द जी ने सारी घटना यथार्थ में बता दी। श्री प्रभुजी ने इनके शरीर में कपूर तथा सिरके की मालिस करने की आज्ञा दी। परिणाम स्वरूप दो तीन दिन में शरीर यथास्थिति में हो गया। श्री प्रभुजी ने कहा—गोपालानन्द ! तुम्हें क्या फौज में भर्ती होना था। जो इस प्राणायाम की आवश्यकता पड़ गई। कहने का तात्पर्य यह है कि मुक्त पुरुषों के भी मन—बुद्धि प्रकृति में विद्यमान रहते हैं। उनसे बद्ध व्यक्ति कभी भी सम्पर्क करके लाभ ले सकता है। दिल्ली में हमारे एक बच्चे ने ध्यान में स्वामी हरिदास से साक्षात्कार किया

और अनेक रागों का ज्ञान प्राप्त किया। शब्द भी आकाश में नित्य रहता है। इसलिये इसे शब्द ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। आधुनिक वैज्ञानिक भगवान कृष्ण की वाणी को भी पकड़ने का प्रयास कर रहे हैं ताकि गीता के अमर ज्ञान को पुनः सुन सकें। मैंने अपने व्याख्यानों में कई बार ऋषिकेश के अवधूत केशवानन्द का प्रसंग सुनाया था। अवधूत जी ऋषिकेश में पुरानी झाड़ी में रहते थे। वहाँ महात्माओं की अनेकों कुटियायें थी। ब्र० गोपालानन्द जी ध्यान में बैठ गये और झाड़ियों में रह गये महात्माओं के तेजोमण्डल को देखना प्रारम्भ किया। उन सब में विशेष तेजोमण्डल वाले महात्मा अवधूत जी ही थे। वे गंगाजल में खड़े होकर कई घण्टे किसी मन्त्र का जाप करते थे। ब्र० गोपालानन्द जी ने देखा कि उस मन्त्र के जपते ही वे श्रीकृष्ण में लय हो जाते हैं। उन्होंने उस मन्त्र को जानना चाहा। इसकी कई प्रक्रियायें होती हैं। एक उपाय तो यह है यदि योगी शक्तिवान है तो दूसरे के सूक्ष्म शरीर का आकर्षण करके उस ज्ञान को प्राप्त कर ले। किन्तु जिसके अन्दर प्रवेश करना है वह यदि शक्ति सम्पन्न है तो अपने भीतर घुसने नहीं देगा। ज्ञान प्राप्ति का दूसरा उपाय यह है कि जिससे हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उसके मन में मन, बुद्धि में बुद्धि मिला लें तो उस योगी के ज्ञान का संक्रमण हो सकता है। ब्र० गोपालानन्द जी अवधूत जी के सूक्ष्म शरीर को खींचने की कोशिश करने लगे किन्तु वे सफल नहीं हुये। दूसरे उपाय के रूप में उन्होंने अपने मन–बुद्धि को उनके मन–बुद्धि में लय करना चाहा किन्तु उन्होंने उनके सूक्ष्म शरीर को प्रवेश नहीं करने दिया। उस दिन वे अपने प्रयास में सफल नहीं हो सके। बाद में प्रार्थना करने पर अवधूत जी ने मन्त्र बता दिया। किन्तु साथ में यह कह दिया कि इसके जपते ही तुम्हारी ध्यानस्थिति क्षीण हो जायेगी। इस पर ब्र० गोपालानन्द जी ने कागज पर लिखे उस मन्त्र को फाड़कर फेंक दिया।

अभिप्राय केवल यह है कि प्रकृति जन्य होने से मुक्त पुरुषों का मन–बुद्धि भी प्रकृति में विद्यमान रहा करते हैं। उनसे सम्पर्क स्थापित करके योगी उनके ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी अनेक मुक्त पुरुषों से सम्पर्क करके ज्ञान प्राप्त कर लिया करते थे। इसलिये तुम सबको योगध्यान में अवश्य बैठना चाहिये। तुम श्री प्रभुजी के स्वरूप के सामने बैठकर ध्यान में बैठा करो। श्रीप्रभु जी का स्वरूप हर कोई समझ नहीं सकता। मद्रास की रानी पदपावनी भाई नृसिंह मूर्ति की शिष्या थी। वह कामकोटि के शंकराचार्य के पास श्री प्रभुजी के स्वरूप को लेकर गई। उनसे पूछा—यह मेरे दादा गुरुदेव का चित्र है। इसके अन्दर क्या शक्ति है ? वे कहने लगे—नारायण स्वयं ! नारायण स्वयम् ! ये स्वयं नारायण हैं। रानी ने फिर पूछा—इस चित्र में क्या ताकत है ? शंकराचार्य जी अन्तर्दृष्टा थे। उन्होंने कहा—हजारों को एक साथ मुक्ति देने की ताकत इस चित्र में है। रानी ने उनसे फिर पूछा—मेरे गुरुदेव एक

शक्तिपीठ में अनुष्ठान कर रहे हैं। उनका अनुष्ठान सफल हो जायेगा। तुम्हें पता है। शक्तिपीठ क्या होता है ? शक्तिपीठ उन स्थानों का नाम है—भगवान् शंकर की सहधर्मिणी सती ने यक्ष के यज्ञ में जिस समय अपना शरीर छोड दिया था। उस मृत शरीर को लेकर भगवान स्थान-स्थान घूमते रहे। सती के शरीर के अंग का जो टुकड़ा जहाँ गिर गया उन सारे स्थानों का नाम शक्तिपीठ है। और भगवान शंकर का वरदान है कि शक्तिपीठ में बैठकर जो अनुष्ठान करते हैं वे सफल होते हैं। रानी पदमावनी ने शंकराचार्य जी से पूछा—मेरे गुरूदेव एक शक्तिपीठ में अनुष्ठान कर रहे हैं। क्या वह सफल होगा। कामकोटि शंकराचार्य जी ने कहा—अनुष्ठान तो सफल होगा किन्तु तुम्हारे दादा गुरूदेव उसे योग में बदल देंगे। वही हुआ। नृसिंह मूर्ति जी अनुष्ठान के बाद मेरे पास सवांई आश्रम आये और कहने लगे—भाई जी। मैंने शक्तिपीठ में अनुष्ठान किया वह श्री प्रभुजी ने बदल दिया। वे जिस कामना से अनुष्ठान कर रहे थे। उसका मुझे ज्ञान था। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि श्री प्रभुजी का स्वरूप अलौकिक है। तुम सब उनको प्रणाम करके अपने घरों में ध्यान में बैठा करो। वे हजारों को एक साथ मुक्ति देने वाले हैं। इसलिये योगी बनो। भगवान् श्री कृष्ण के चरित्रों में तो हर जगह योग ही योग टपकता है। इसलिये तुम सब अन्तर्दृष्टा बनो ! अन्तर्जगत् में प्रवेश कर जाओगे तो निहाल हो जाओगे—कृतार्थ हो जाओगे। सब के ऊपर कृपा बरस जायेगी। नैपाल धाम से बैठे हुये श्री प्रभुजी बराबर सब को देख रहे हैं। अपने हर बच्चे को देखते हैं। बस मेरी बातों को सुनकर अपने को पवित्र योग मार्ग में लगाओ। बार-बार सभी को आशीर्वाद।

(भिण्ड नवम्बर १९८६)

"मैं इसकी कल्पना कर सकता हूँ कि किसी राष्ट्र के बिना भी गौ रह सकती हैं, पर गौ के बिना कोई राष्ट्र नहीं रह सकता।"

—सर विलियम वेडरव वर्नने

योगियों की अचिन्त्य पराशक्तियाँ

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

योग मुक्ति का सक्षम मार्ग है। योग से संसार में सभी कुछ प्राप्त किया जाता है। **यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति सैषा योग विद्या'** अर्थात् जिस विद्या के जान लेने पर सभी कुछ जाना जाता है उसा अमर विद्या का ही नाम योग है। श्रुति में भक्ति, योग, ज्ञान आदि साधन मुक्ति के मार्ग बताये हैं। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति योग के पूरक अंग के रूप में हैं। श्री मद्भागवत् में अपने भक्त उद्धव को उपदेश करते हुये भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ज्ञानं कर्म च भक्तिश्त नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।

अर्थात्—त्रिशाखात्मक योग मनुष्य के परम कल्याण के लिये मैंने बताये हैं। ज्ञान, भक्ति एवं कर्म योग के अंग हैं। मनुष्य के कल्याण के साधन के रूप में उनको छोड़कर और कोई साधन नहीं है। योग दर्शन में भगवान् पतञ्जलिदेव जी ने साधन योग के अन्तर्गत तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान का विधान बताया है।

ये तीन अंग ही कर्म, भक्ति एवं ज्ञान के रूप में साधनभूत अंग हैं—तप कर्मयोग का रूप है। तप से पाप क्षय होते हैं। जो तपस्वी नहीं है वह योग को प्राप्त नहीं कर सकता। मुक्ति मार्ग में प्रवेश पाने का पहला कदम है कर्मयोग जो तप से ही सम्पादित हुआ करता है। स्थूल पाप तप से क्षय हो जाया करते हैं। शरीर एवं मन के शोधन का उपाय है तप। आसन, प्राणायाम तथा अन्य क्रियायें कर्मयोग कहलाती हैं। इन क्रियाओं का फल है मन का एकाग्र होना। साधन योग का दूसरा अंग स्वाध्याय है। इसमें इष्टदेव के मन्त्र का जाप स्तुति पाठ तथा तत्व का बोध कराने वाले पवित्र ग्रन्थों का पठन, पाठन एवं मनन आता है। ठीक प्रकार से किया गया स्वाध्याय भक्ति को उत्पन्न कराने वाला होता है। **स्वाध्यायद् इष्टदेवता सम्प्रयोगः'** इस सूत्र के अनुसार स्वाध्याय से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। इष्टदेव के दर्शन के पश्चात् ही सच्चे अर्थों में ईश्वर प्रणिधान—ईश्वर समर्पण होता है।

भक्ति मार्ग के उपासक भक्ति को ही श्रेष्ठ मानकर ज्ञान एवं योग की लघुता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं मुझे एक श्रद्धेय स्वामी जी की पुस्तिका पढ़ने को मिली। उसमें मीरा बाई

का प्रसंग आया है कि मीरा बाई चिन्मय शरीर से भगवान् में लय हो गई थी। स्वामी जी लिखते हैं कि इस प्रकार से चिन्मय शरीर से भगवान् में लयता भक्ति से ही हो सकती है ज्ञान या योग में यह सामर्थ्य नहीं है। किन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। मनुष्य अपनी बुद्धि एवं संस्कार के अनुसार सोचा करता है। कोई कहेगा—मीरा भगवान् की भक्ता थी। हम कहेंगे—मीरा योगिनी थी योग शक्ति से ही उनके जीवन में चमत्कार थे। एक ही व्यक्ति में भक्ति, ज्ञान व योग का समन्वित रूप हो सकता है। वही व्यक्ति पूर्ण व्यक्तित्व वाला हुआ करता है। भगवान् ने भक्ति, ज्ञान और योग को कभी पृथक् नहीं माना है। गीता में एक–एक पद में योग की ही बात भगवान् ने कही है—योग ही मनुष्य को जीवन में पूर्णता दे सकता है। तत्वदर्शी योगी में भगवान् की भक्ति स्वाभाविक ही होती है। दिव्य दृष्टि होने के कारण वस्तु का यथार्थ ज्ञान योगी को होता है। योगी में सतोगुण का पूर्ण प्रकाश होता है। ऐसी स्थिति वाले योगी के विषय में भगवान् कहते हैं—

सर्वद्वारेषुदेहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते'

अर्थात् सतोगुण के पूर्ण उदय होने पर योगी के रोम–रोम से प्रकाश की किरणें निकलती है। योगी की आत्म शक्ति एवं स्थिति का आंकलन करना बहुत ही कठिन है। अधिकतर लोग योग को क्रियाओं से सम्बन्धित मानकर बात किया करते हैं। मार्ग हमारा भक्ति का हो या ज्ञान का हो चित्त की एकाग्रता सबमें आवश्यक है। इसे ही योग कहते हैं।

योग दर्शन में भगवान् पतंजलि देव ने संयम से प्राप्तव्या सिद्धियों का विस्तार से वर्णन किया है। संयम सिद्धि प्राप्त योगी का परमाणु से महत्व (बुद्धि) पर्यन्त वशीकार होता है। अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व पर योगी का वशीकार या अधिकार होता है। इस प्रकार योगी प्रकृति में यथेष्ट परिवर्तन कर सकता है।

'जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात'

प्रकृति के आपूरण से योगी अपने शरीर को किसी भी रूप में बदल सकता है। योगी वस्तुओं के संघात विज्ञान को जानकर वस्तुओं में ऐच्छिक परिवर्तन कर लिया करता है। ऐसी योग्यता वाले योगी का शरीर स्वतः ही चिन्मय होता है। मार्ग हमारा कोई सा हो सभी मार्ग में ध्यान आवश्यक है। समाधि अथवा लयता के बिना शक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ करता है। ध्यान क्रिया की सिद्धि ही सभी सिद्धियों का मूल है। जो ध्यान योग की शक्ति को जानता है वह किसी भी मार्ग के साधक को छोटा बड़ा नहीं कहता। भक्ति मार्ग वाले यदि ठीक से साधना करते हैं। तो वे योग ही करते हैं। साधना के मार्ग को हम कुछ भी नाम दें किन्तु सभी मार्ग में 'समचित्तत्व' आवश्यक है। भगवान् ने गीता में—**नित्यं च समचित्तत्वम् इष्टानिष्टोपपत्तिषु'** की बात कही है। साधक के जीवन में अच्छे और बुरे दोनों की प्राप्ति में चित्त का सम रखना

आवश्यक है। नित्य ही साधक को अपने चित्त को सम रखने की बात गीता में भगवान् ने स्थल–स्थल पर कही है। इस प्रकार से समचित्तता के आने पर ही योगी में भक्त में शक्तियों का संचय हो सकता है। गीता का योग विराट एवं समग्र योग है। इससे बाहर कुछ शेष बचता ही नहीं है। ठीक प्रकार से गीता को समझ लेने पर भिन्न–भिन्न मार्ग रूप विवाद रहता ही नहीं है। विवाद तभी तक है जब तक साधक ठीक प्रकार से साधना रूढ़ नहीं हो जाता है। सभी समस्याओं का समाधान चित्त की एकाग्रता से मिल जाता है। योग ज्ञान से सभी संशयों का नाश हो जाया करता है। संशयों के मिट जाने पर योगी कूटस्थ–आत्मवान हो जाता है। फिर उसे कर्मबन्धन नहीं हो सकता।

योगी ही पराशक्तियों का स्वामी होता है। उसके लिये संसार में कोई वस्तु अलभ्य नहीं है। परमात्मा की महिमा को ठीक प्रकार से जानने वाले योगी में परमात्म भक्ति होती है। सामान्य जन प्रायः भक्ति का स्वांग करते हैं इसलिये भगवान् कहते हैं–**वासुदेवः सर्वमिति सः महात्मा सुदुर्लभः**"। सब कुछ वासुदेव रूप है ऐसा जानने वाला महापुरुष बहुत दुर्लभ है। तत्वदर्शी योगी भक्ति, कर्म एवं ज्ञान का मूर्तरूप होता है। इसलिये ही भगवान् से सभी को **'तस्माद्योगी भवार्जुन'** कहकर योगी बनने की आज्ञा दी है।

* * *

शोक-संवेदना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि अपने आश्रम के वरिष्ठ गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री केशवदेव शर्मा (दादा) का गत ६ मई २००४ को देहावसान हो गया। वे ७८ वर्ष के थे और कुछ वर्षों से योग साधन आश्रम ऋषिकेश में निवास कर रहे थे। स्मृति शेष ७ केशव दादा लगभग ४५ वर्ष पूर्व श्री गुरु चरणों में आये और आजीवन श्री गुरुदेव की सेवा में सन्नद्ध रहे। उनके परिवार में उनके भाई एवं भतीजे हैं।

एक अन्य दुःखद सूचना सहारनपुर से है। यहाँ पुराने गुरुभाई श्री बृजलाल मित्तल मसाले वालों का गत माह देहावसान हो गया।

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी से प्रार्थना है कि वे दिवंगत आत्माओं को अपनी अभय गोद में स्थान देते हुए शोक संतप्त आश्रमवासियों एवं परिवारीजनों को दुःख की इस घड़ी में धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें। 'सिद्धयोग' परिवार अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

–संपादक

भजन

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

बहुत कठिन जीवन की डगरिया;
कहाँ फूल मिलें, कहाँ शूल मिलें
कुछ मालूम ना।।टेक।।

कहीं मान, अपमान कहीं तो; कहीं तपन कहीं ओस।
कहीं कहीं पर कण्ठ गरजता; कहीं कण्ठ खामोश।
कभी पुरवैया, कभी पछैंया, आपक कभी सन्तोष।।
कबहु बैधो गज कबहु बकरिया, कहाँ फूल मिलें–१–

पाँच कदम संग चले अगर तो छठे कदम पर बैर।
कभी किसी को मार भगाते; कभी मनाते खैर
वन उपवन की सैर करन को दौड़ लगाते पैर।।
कबहु अकेले कभी बीच बजरिया, कहाँ फूल मिले–२–

ना जाने कैसा लायेगा भविष्य–डाकिया तार ।
इसे हँसायें वह रो जायें; कभी प्यार कभी मार।
ऋतु–परिवर्तन जैसा जीवन काट रहा संसार।।
सत्–रज्–तम की पकड़ जवरिया, कहाँ फूल मिले–३–

लगी रहेगी इस दुनियाँ में पाप–पुण्य की छाप।
हाय विलाप करो चाहे जितना दूर न हो सन्ताप।
तेरा मेरा टेड़ा–मेड़ा है जीवन का चाप।
मिलतु अंधेरा कभी मिलति उजरिया, कहाँ फूल मिलें–४–

सतसंग प्रभाव

कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर)

सतसंग अर्थात् सज्जनों का संग है। अब प्रश्न उठता है कि सज्जन कौन है ? सज्जन की परिभाषा के अन्तर्गत सद्आचरण करने वाले व्यक्ति से लेकर, ऐसे ग्रन्थ जो हमें सदाचरण पूर्वक जीवन यापन करने के लिए निर्देशित करते हैं। ऐसे ग्रन्थों में वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत, रामायण, गीता तथा संतों एवं नीतिकारों के साहित्य भी महत्वपूर्ण है।

सत्संग की महिमा का प्रभाव अचूक है। यह क्षण भर में ही व्यक्ति में परिवर्तन कर देते हैं। महाप्रभु का रामरती पर ऐसा ही प्रभाव दिखाया था। सद्गुरूदेव भगवान के साथ साधकों को ऐसी बहुत सी स्वानुभूति है। सतसंग वस्तुतः हृदय के शोधन का साधन है। इससे हृदय का परिष्कार होता है। मन के विकार समाप्त होते हैं। इससे स्थिरता एवं एकाग्रता बनती है। क्योंकि कोई कार्य व्यवस्थित चित्त के बिना नहीं हो सकता। कहा भी गया है कि—

"अव्यवस्थित चित्तानां किमपि कार्यम् न सिद्धयति"।

सतसंग जीवन के व्यवहारिक पहलू पर तीव्रता से प्रभाव दिखाता है। व्यक्ति में समयनिष्ठता, प्रखरता एवं बोधगम्यता आती है।

योग शरीर शोधन के साथ हृदय के शोधन का उपदेश होता है। इसमें अभ्यास एवं वैराग्य को माध्यम बनाया गया है। बार–बार के अभ्यास से मन में दृढता आती है। व्यक्ति संकल्पवान होता है। इसलिए अभ्यास किसी भी साधक एवं सामाजिक व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। जैसे जिस कार्य को हम करना नहीं जानते उसमें अभ्यास की आवश्यकता होती है। वैराग्य से मन में किसी भी वस्तु के प्रति लोभ की प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न होती है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि—"तेन त्यक्तेन् भुजीथाः"। अर्थात् किसी भी वस्तु का त्याग पूर्वक उपभोग भी वैराग्य की कोटि में आयेगा। क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति के होने से व्यक्ति में किसी भी वस्तु के प्रति विशेष स्पृहा नहीं रह जाता है, बल्कि थोड़े में ही संतुष्ट हो जाता है।

तुलसीदास ने सत्संग के प्रभाव के बारे में रामचरित मानस में कहा है कि—"नारद जानऊ संग प्रभाऊ" अर्थात् नारद संग के प्रभाव को जान लिया है। इसीलिए नारद जी कभी भी भगवान के सानिद्धय को छोड़ना नहीं चाहते हैं। संग का ही प्रभाव था कि बाल्मीकि जी में अद्भुत परिवर्तन हुआ, जो कालान्तर में चलकर "राम के विशद् चरित्र को लिखा। जो दिव्य ग्रन्थ "रामायण" के रूप में सामने आया।

व्यक्ति के जीवन में दो शक्तियाँ क्रमशः दैवी शक्ति तथा आसुरी शक्ति क्रालक्रम के अनुसार आती रहती हैं। जिसमें आसुरी शक्ति व्यक्ति को कान्तिहीन बना देती है। जबकि दैवी शक्ति व्यक्ति को कान्तिवान बनाती है। व्यक्ति को जीवन में दैवी शक्ति सम्पन्न बनना ही श्रेय

है। प्रत्येक व्यक्ति दैवी शक्ति सम्पन्न बनना चाहता है। लेकिन व्यक्ति के अपने कर्म संस्कार होते हैं। वे कर्म संस्कार बंधन में जकड़े रहते हैं। इसलिए उनसे मुक्त होना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। हमारे सद्गुरूदेव भगवान इसी हेतु मन्त्र जप के लिए सदैव उपदेशित करते रहते थे। क्योंकि इससे ही पाप कर्म दग्ध होते हैं। पाप कर्म के न होने से तथा पाप से बचने का आसान उपाय सतसंग है। तुलसी दास जी ने बड़े जोरदार शब्दों में निर्देशित किया है–

एक घरी आधौ घरी, आधौ में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरै कोटि अपराध।।

अर्थात् यदि एक घरी के भी आधे में यदि साधु की संगति मिल गयी तो हे तुलसी अर्थात् तुलसी के "तु" से तू अर्थात् "राम" 'ल' से लक्ष्मण और 'सी' से सीता यानि राम लक्ष्मण और सीता की कृपा से करोड़ों पाप मिट जाते हैं।

तुलसी ने इसीलिए अपने ग्रन्थ मानस के प्रारम्भ में ही संतों के संग के प्रभाव का वर्णन किया है। उसका कारण है कि स्वतः गोस्वामी जी का हनुमान जी के साथ सतसंग करने का परिणाम रामचरित मानस है। यहाँ पर गोस्वामी जी के द्वारा बालकाण्ड में संतों के चरित्र के बारे में बताते हुए कहा कि–

साधु चरित शुभ चरित कपासू।
निरस विसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुःख परछिद्र दुरावा।
वंदनीय जेहि जग जस पावा।।

अर्थात्–संतों का चरित्र कपास की तरह धवल है। यद्यपि उसका फल नीरस, विशद, तथा गुणमय होता है। तात्पर्य यह कि कपास का फल नीरस होता है। संतों का चरित्र भी विषयासक्ति से रहित होता है। इसलिए वे नीरस है। कपास की रूई धवल होता है। संतों का हृदय भी अज्ञान और पाप रहित होता है। इसलिए विशद है। कपास में तन्तु होते हैं। उसी प्रकार संतों का चरित्र भी सद्गुणों का भण्डार होता है। इसलिए गुणमय है। जो संत स्वयं कपास की तरह दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों अर्थात् दोषों को ढँकते हैं। जिसके कारण उसने जगत् में वन्दनीय यश प्राप्त किया है। आगे पुनः कहा–

मदु मंगल मय संत समाजू।
जो जठा जंगम तीरथ राजू।।

अर्थात् संतों का समाज आनन्द और कल्याण मय है। जो जगत में चलता फिरता तीर्थ राज प्रयाग है। यह प्रयाग करता क्या है ? आगे पुनः बताया–

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देई सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।

अर्थात् यह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल को देने वाला है, तथा उसका प्रभाव भी प्रत्यक्ष है।

संत संग की ऐसी विचित्र महिमा है कि कौआ भी कोयल तथा बगुला हंस हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सतसंग से निश्चय ही हृदय का परिष्कार होकर उसमें परिवर्तन हो जाता है। यह सिद्धान्त सत्य है। आज वर्तमान भाग दौड़ के जीवन में व्यक्ति शक्ति एवं ऐश्वर्य को ही सब कुछ मानकर उसी में रम गया है। किन्तु उसकी अन्तिम परिणति पर दृष्टिपात करें तो अंततः ईश्वर प्रदत्त वांछित वस्तु ही प्राप्त होती है। हमारा सारा प्रयास असफल हो जाता है। व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं पात्रता की लालसा से तृष्णा का जन्म होता है। तृष्णा कभी शान्त न होने वाली है। शास्त्रीय सिद्धान्त है–"**न जातु कामान् हविष्यान्-हविष्यान् न शाम्यति**"।

संतसंत की अद्भुत महिमा है। जिस प्रकार से भौतिक पदार्थों की उपलब्धि पुरुषार्थ से होता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक उपलब्धि का सरल साधन सतसंग है। आज कलिकाल में विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। उसका भी समाधान सतसंग से हो जायेगा। यह वस्तुतः मन में उठने वाली असद्वृत्तियाँ समाप्त हो जायेगी। मन में उठने वाली कामनायें समाप्त होने लगती हैं। श्री सिद्ध गुफा आश्रम संवाई में प्रातः स्मरणीय परम पूज्य गुरुदेव भगवान जी साध्य वेला में इसीलिए हम सब मन्दधिकारी लोगों के लिए आदरणीय ब्रह्मचारियों द्वारा भजन एवं महाप्रभु जी के चरित्रों को गायन के माध्यम से सुनवाते रहते थे। जिससे हृदय के भाव शुद्ध हों। ऐसे शुद्ध भाव में ही सिद्धान्त और शास्त्रीय ज्ञान स्थिर रह पाते हैं। मन में सद्विचार स्वत् स्फूर्त होते रहते हैं। इसलिए सतसंग को जीवन का अनिवार्य अंग (कर्म) मानकर अवश्य ही करना चाहिए। इससे आध्यात्मिक सुख के साथ भौतिक सुख स्वाभाविक रूप से सिद्ध हो जाता है।

"हम ही अपने को सुख पहुँचाते हैं और हम ही अपने को दुःख पहुँचाते हैं। हम ही अपने मित्र हैं और हम ही अपने शत्रु हैं। ईश्वर की सृष्टि विचित्र है।"

"संस्कार शक्ति व साधना शक्ति" (भाग-६)

--कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

पूर्व प्रकरण में 'विद्या के संस्कारों का साधना में क्या महत्व है, इस विषय पर प्रकाश डाला गया था। यदि चुने गये 'साधना पथ' के अनुकूल विद्या ग्रहण की जाये तो साधक की साधना विलक्षण गति से आगे बढ़ती हुई लक्ष्य तक पहुँच जाती है। 'विद्या' कभी भी अज्ञानता नहीं लाती क्योंकि विद्या का दूसरा नाम 'प्रकाश' है। प्रकाश हमेशा अन्धकार का भक्षण करता है। परन्तु जब 'साधन' भाग का उल्लेख आता है तो विधि-निषेध का वर्णन आता है। जो जिस मार्ग का अनुगामी है, उसके लिए उसी मार्ग के संस्कार सहयोगी होते हैं, उस साधन के विपरीत दूसरे साधन के संस्कार साधना में प्रतिरोधी हैं। सभी विषय में जानना अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना हानिप्रद नहीं है, परन्तु विवेक हीन व अल्पज्ञानी अधिक जानकर भ्रमयुक्त हो जाता है और अपनी साधना में पूर्ण श्रद्धा नहीं बन पाती। अतः पढ़ना व जानना व मनन करना ये एक विशेष कला है, इसी कला में दक्षता प्राप्त करने के लिए विद्वान् व विदुषी अर्थात् शास्त्रज्ञ, आचार्य, आचार्या, गुरुजन आदि का विशेष योगदान है। विद्या के संस्कार के बाद अब मित्र मंडली के संस्कारों का साधना में क्या प्रभाव पड़ता है, आइये एक दृष्टि इस ओर भी--

'मित्र मंडली के संस्कार'

'मित्र' शब्द कहते ही मन में आह्लाद बढ़ जाता है क्योंकि यह रिश्ता खून का न होते हुए भी उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगति का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बहुत भारी पड़ता है। हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं जब हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं जिसे देव बना लिया जाये या राक्षस। अतः जिन व्यक्तियों को हम मन की हर बात कह देते हैं अथवा उनकी हर बात मान लेते हैं और इस सम्पर्क सूत्र की संज्ञा रख देते हैं 'मित्रता', तो मित्र के चरित्र पर भी गहन दृष्टिपात कर ही लेना चाहिये। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं। तो उसके गुण-दोष को कितना परख लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति का हम कुछ भी विचार नहीं करते। हंसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग, थोड़ी सी चतुराई या साहस ये दो चार बातें किसी में देखकर लोग चटाचट उन्हें अपना मित्र मान लेते हैं। हमें सोचना चाहिये कि मैत्री का उद्देश्य क्या है ? यह

एक ऐसा प्रिय साधन है, जिससे आत्म–शिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान का मत है–"विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा होती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाये, उसे समझना चाहिये कि खजाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमें अपने मित्रों से आशा रखनी चाहिये कि वे उत्तम संकल्पों से हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचायेंगे, हमारे सत्य और पवित्रता को मजबूत करेंगे, कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करेंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की सी निपुणता और परख होती है। सच्ची मित्रता में माता का सा धैर्य कोमलता होती है। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी ही मित्रता का सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

बुरे लोगों की मित्रता इस प्रकार व्यक्ति का नाश करती है जैसे महारथी, दानव्रती व तपस्वी कर्ण का नाश कौरवों की संगति में पड़कर हुआ। अच्छे लोगों की मित्रता इस प्रकार उत्थान करती है। जैसे वानरराज सुग्रीव व वानर दल सेना ने भगवान श्री राम के दुर्लभ कार्य भी सुलभ कर दिये तथा प्रभु श्री राम ने काम बल व मनोबल से हीन दुर्भाग्य से ग्रस्त सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बना दिया।

अच्छे व सच्चे मित्र वे नहीं जो आनन्दमयी जीवन में तो हमारा साथ दें और विपत्ति के दिनों में उनके पास बात करने के लिए वक्त का अभाव तक हो जाता है। सच्ची मित्रता की विपत्ति के समय ही परख होती है। कच्ची मित्रता गुरु द्रोणाचार्य व राजाद्रुपद की मित्रता की तरह क्षण में ढह जाती है और मित्रता ही दुश्मनी में बदल जाती है। द्रोणाचार्य ने पूर्व मित्र द्रुपद जो उनके कटु शत्रु बन चुके थे। उनसे बदला लेने के लिए ही अर्जुन को पूर्ण धनुर्धर बनाया था। अस्तु मित्रता सोच समझकर ही करनी चाहिये। सच्चे मित्र वही होते हैं जो आपत्तिकाल में साथ देते हैं, सुख वैभव में उनका सानिध्य तक भी मिले ना मिले, यह जरूरी नहीं है। एक कथा इस विषय को और भी अधिक स्पष्ट करेगी। यह कथा बौद्धकालीन है। एक परम सुन्दरी कन्या थी, उसका नाम था वासवदत्ता। वासवदत्ता की सुन्दरता को निहारने के लिए रात्रि में अप्सरायें व किन्नरियाँ भी छिपकर आकाश में उतर आती थीं। बड़े–बड़े राजे–महाराजे वणिक व नगरसेठ अपने सारथियों को धीरे से कहते कि रथ को उस मार्ग से ले चलो जहाँ वासवदत्ता का निवास स्थान है, शायद उसकी एक झलक मिल जाये। वासवदत्ता कई बार वातायन में खड़ी–खड़ी मार्ग निहारती रहती थी, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। वह नित्य प्रति ऐसा ही करती थी। उसने कई युवराजों के पास से आये हुये प्रणय निवेदन को ठुकरा दिया था। बहुत से नवयुवक राजघराने के वीर वासवदत्ता के नाम की आहें भरते और लोगों के उपहास का कारण बनते। एक दिन शाम के समय जब वासवदत्ता वातायन में खड़ी थी तो उसे दूर से आता हुआ एक बौध भिक्षु दिखायी दिया। उस भिक्षु का चेहरा इतना दमक रहा था कि वासवदत्ता उसे एकटक देखती रह गयी। वह भिक्षु पीत चीवर पहने, हाथ में, भिक्षा पात्र लिये, रूंड–मुंड अपने चेहरे के तेज से दिशाओं को कान्तिमान सा करते आ रहा था। वासवदत्ता का

मन बरबस उसकी ओर आकर्षित हो गया। जैसे ही भिक्षु वातायन के नीचे से गुजरा, वासवदत्ता ने आवाज लगाई, भिक्षु जरा ठहरो और ऊपर आओ। बौध भिक्षुओं को मधुकरी के लिए कई घरों के दरवाजों पर जाना ही पड़ता था। अतः भिक्षु ने सोचा कि शायद यह महिला भिक्षा देना चाहती है। इसलिये ऊपर चढ गये और भिक्षा पात्र आगे कर दिया। वासवदत्ता ने कहा, भिक्षु मैंने तुम्हें भिक्षा देने के लिए नहीं बल्कि तुमसे भिक्षा लेने के लिए बुलाया है। आज से मेरा तन–मन–धन, मेरा सर्वस्व तुम्हें अर्पण है, बस तुम स्वयं को मुझे भीख में दे दो। अपने अन्तरंग मुझे दे दो। मैं तुम्हारी चिरदासी बनकर रहूँगी।" भिक्षु की तन्द्रा टूटी, उसने कुछ क्षणों तक वासवदत्ता को निहारा और बोला कि हे सुन्दरी अभी उचित समय नहीं आया है, मैं उचित बेला में तुम्हारे सम्मुख अवश्य ही आ जाऊँगा।" वासवदत्ता ने उत्तर दिया कि इससे अच्छा उचित समय और क्या होगा, जब घर में बाहर गलियों में भी कोई नहीं है।" इतना कहकर वासवदत्ता ने भिक्षु का हाथ थाम लिया। भिक्षु ने एक झटके में हाथ छुड़ाया और बोले, सुन्दरी मैंने पहले ही कह दिया है कि यह उचित समय नही है, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मैं उचित समय आने पर स्वयं तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत हो जाऊँगा।" इतना कहकर भिक्षु एक पल रुके बिना ही सीढ़ियों से नीचे उतर गये। वासवदत्ता अब रोज भिक्षु का वातायन में खड़ी–खड़ी इन्तजार करती कि न जाने उचित समय कब आ जाये। परन्तु, दिन, मास, वर्ष बीतते–बीतते दो दशक से अधिक (बस वर्ष से अधिक) हो गये, वह उचित समय नहीं आया। वासवदत्ता रुग्ण और कृषकाय हो गयी। वयस (बुढ़ापे) ने चेहरे की आभा छीन ली और एक दिन अचानक उसे कोढ़ हो गया। उसके शरीर से दुर्गन्ध आने लगी, धीरे–धीरे सारा शरीर मवाद से भर गया। लोगों ने राजा से शिकायत की। राजाज्ञा ने उसे शरीर से कुष्ठित होने पर शहर से बाहर निकाल दिया गया। वासवदत्ता सड़क के किनारे पड़ी–पड़ी अब मौत की घड़ियाँ गिन रही थी। एक दिन अचानक उसे अपने शरीर पर किसी का स्पर्श अनुभव हुआ, उसने देखा कि वही भिक्षु अपने हाथों से धीरे–धीरे उसके घावों को धो रहा था और मवाद को साफ कर रहा था। वासवदत्ता ने कहा, "अब क्या लेने आये हो, रूप और यौवन सब कुछ खत्म हो गया, अब मेरे पास क्या रखा है ?"

भिक्षु ने उत्तर दिया, कि "मैंने कहा था न, कि उचित समय पर मैं स्वयं आऊँगा, तुम उस समय मेरा आशय न समझ सकी। रूप, धन, यौवन इन सबके मित्र तो बहुत मिल जायेंगे पर सच्चे मित्र का साथ कब मिलता है ? इस समय तुम्हारी पीड़ा हरने कोई नहीं आया। परन्तु मैंने तुमसे उचित समय पर आने का वायदा किया था, सो आ गया। मै तुम्हारा सच्चा साथी हूँ। वासवदत्ता भिक्षु के चरणों में गिर पड़ी, बोली ! भिक्षु तुमने मेरी आँखें खोल दी, साथ–साथ मैं आध्यात्मिक दृष्टि भी पा रही हूँ, मेरी दौड़–धूप वासना की ओर थी, काश मैं उसी समय तुमसे ज्ञान की याचना करती, जब तुम्हारे प्रथम दर्शन हुए थे। वास्तव में तुम मेरे सच्चे साथी ही नहीं, सच्चे मार्गदर्शक अर्थात् मेरे सद्गुरू हो। उस बौद्ध–भिक्षु का नाम था– 'उपगुप्त'। इन्हीं के आदेश से सम्राट–अशोक ने अपनी तलवार गंगा में फेंककर बौध धर्म स्वीकार किया था। किसी

ने सच कहा है—

'जो सच से रूबरू कराये, वही मित्र कहलाये'

अतः व्यक्ति को चाहिये वह उसी से मित्रता करे जो सत्य का बोध करा दे।

ईश्वर की ओर अभिमुख कराने वाले वाक्य ही सच हैं, उसकी लीला, कथा वर्णन करने वाले शब्द ही सच हैं। जो अपना जीवन धीरे–धीरे उस प्रभु के चरणार्विन्दों में लगा दें, ऐसी प्रेरणा दिल में भरने वाले ही हमारे सच्चे मित्र हैं। जो व्यक्ति सांसारिक वार्तालाप के स्थान पर आध्यात्मिक चर्चा में हमारा चित्त मोड़ दे, गुरुभक्ति का रस हृदय में भर दे वही हमारा सच्चा मित्र है।

महान सूफ़ी दरवेश शम्स तबरेज ने परमात्मा से सच्चे दिल से हर बार यही प्रार्थना की "हे कुल मालिक ! मुझे अपने ऐसे प्यारे का साथ दे, जिसके साथ मैं तेरे प्रेम की बातें कर सकूँ, तुम्हारी जुदाई की पीड़ा भी उसके आगे व्यक्त कर सकूँ और तेरे मिलाप की अकथनीय आनन्द की कथा सुना सकूँ व उससे सुन सकूँ, बस मुझे एक ऐसा सच्चा मित्र दे दे।" परमात्मा ने उसकी प्रार्थना सुनी और वह उसे कूनीयाँ ले गया, वहाँ उसकी मुलाकात मशहूर विद्वान मौलवी रूम से हुई, जिसका आदर देश का बादशाह भी करता था। शम्स तरवेज और मौलवी रूम की मित्रता प्रगाढ़ होती चली गयी। उनका मिलने सोने में सुहागा साबित हुआ। मौलवी रूम स्वयं लिखते हैं—"अगर शम्स तरवेज की मेहर की नजर मुझ पर न पड़ती तो मौलवी रूम कभी मौलाना रूम न बन पाता।" अतः—

जो उसकी ओर ले जाये, वही मित्र कहलाये।

मित्रता की कसौटी पर हर कोई खरा नहीं उतरता। अब वह समय नहीं रहा कि दस पाँच मित्र बना लिये जायें और विपत्ति पड़ने पर उनकी परख करें कि कौन सच्ची मित्रता के लायक है। ऐश्वर्यवान के दुश्मन भी मित्र बनने का स्वांग कर लेते हैं। नेता, अभिनेता से काम निकालने के लिये उसके सहकारी अथवा अन्य व्यवहारी भी मित्रता का अभिनय कर लेते हैं। और मित्रता टूटने पर मित्र से उत्पन्न राग ही अत्यधिक द्वेष का कारण बन जाता है। अतः मित्रता का सम्बन्ध हर किसी से नहीं बनाया जाना चाहिये। जब मित्र बात–बात पर शंका करे व अविश्वास की दृष्टि से बात करे तो उससे धीरे–धीरे अलग हो जाना चाहिये क्योंकि ऐसे मित्र हानिकारक सिद्ध होते हैं। जैसा कि—

परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्ज्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भम्पयोमुखम।।२५५।। चा० नी०

अर्थात् पीछे पीछे काम को नष्ट करे और सम्मुख मीठी–मीठी बात करे, ऐसे मित्र को छोड़ देना चाहिये क्योंकि ऐसे व्यक्ति विष भरे उस घड़े के समान हैं, जिसमें ऊपर दूध और नीचे विष है।

अतः हर किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिये। मित्र वही है जिस पर अपना विश्वास

जमे– (**तन्मित्रं यत्र विश्वासः**)। कुमित्र पर तो विश्वास करना ही न चाहिये और सुमित्र से भी रहस्यमय बात न कहना चाहिये, क्योंकि कभी मित्र रुष्ट हो जाये तो उस रहस्य का भण्डाफोड कर देगा। यथा–

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत्।
कदाचित्कुपितं मित्रं गुह्यं प्रकाशयेत्।।२/६।। चा० नी०

विदुर नीति भी यही कहती है–बुद्धिमान पुरुष को दुष्ट बुद्धि वाले एवं विचार शक्ति से रहित पुरुष का तिनकों से ढके कूप की भांति परित्याग कर देना चाहिये क्योंकि उसके साथ की गयी मित्रता नष्ट हो जाती है। *(७/४८ वि०नी०)*। विदुर जी आगे कहते हैं कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, दुःसाहसी तथा धर्मभ्रष्ट पुरुषों से विद्वान को मित्रता नहीं करनी चाहिये। *(७/४९, वि०नी०)*। मित्र ऐसा होना चाहिये जो उपकार को मानने वाला हो, सत्य का अधिक पालन करता हो, उदार हो, दृढ़ प्रेम वाला हो, मन का चंचल न हो, जितेन्द्रिय हो, मित्रता का गलत लाभ न उठाता हो। *(७/५०, वि०नी०)*।

उपरोक्त लक्षणों में कोई विरला ही पारंगत होता है, अन्यथा अधिकांश मित्र समय का लाभ उठाकर ऐसा डंक मारते हैं कि चित्त की शान्ति भी भंग कर देते हैं। इससे अच्छा है कि विद्या से प्रेम कर लिया जाये क्योंकि विद्या एक ऐसा मित्र है जो हर देश, काल, परिस्थिति में लाभकारी है क्योंकि विद्या से मित्रता करने पर विनय, धैर्य, ज्ञान, साहस, धर्म आदि ऐसे दिव्य गुण प्रकट हो जाते हैं कि एक–एक गुण आपत्ति में सहायक होता है। और ऐसे व्यक्ति के अनेक सहायक हो जाते हैं। **स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते**: राजा केवल अपने देश में सम्मान पाता है परन्तु विद्यावान की हर जगह कदर होती है, उसके अनेक सहायक हो जाते हैं जैसा कि कहा गया है–परदेश में विद्या मित्र है। विपत्ति में धैर्य मित्र है, आचरण करने पर ज्ञान मित्र है। विद्वान के पास साहस धैर्य, विनय, शीलता, सत्य भाषण, मधुर भाषण, ज्ञान, प्रेम आदि दिव्य गुण होते हैं। अतः इनके मित्र अगर टूट भी जाते हैं तो इसके पीछे कुमित्र का दुर्भाग्य ही होता है। क्योंकि विद्वान के पास साहस, धैर्य, विनय, शीलता, सत्य, भाषण, मधुर भाषण, ज्ञान, प्रेम आदि दिव्य गुण होते हैं अतः इनके मित्र अगर टूट भी जाते हैं तो इसके पीछे कुमित्र का दुर्भाग्य ही होता है क्योंकि विद्वान की मित्रता, विद्वान से ही स्थायी होती है। जो व्यक्ति स्वार्थी, नीच मनोवृत्ति, कुचाली न धूर्त तथा मित्र की उन्नति न चाहने वाला हो उसका कोई मित्र नहीं होता न वह किसी का सच्चा मित्र बन सकता है।

अतः संस्कारवान व विद्वान के साथ मित्रता स्थायी करने के लिए दिव्य गुणों का अपने अन्दर होना भी जरूरी है। कुचाल को परखने के बाद भी यदि मित्रता स्थायी बनाने का भाव आये तो समझो दोनों स्वार्थी हैं। कर्ण जानता था कि दुर्योधन की चाल है कि मेरी आड़ लेकर पाण्डवों पर विजय प्राप्त कर लूँ, अतः वह उसकी मित्रता भंग करना चाहता था। परन्तु राज्य श्री से हीन होकर वह अर्जुन से प्रतिशोध नहीं ले सकता था इसलिये इस स्वार्थ की पूर्ति के

लिये उसने अन्त समय तक मित्रता निभायी। अतः दोनों की मित्रता स्वार्थ परक थी। परन्तु विद्वान को मित्र की कुचाल व शंकित दृष्टि से बात करने के भाव को देखकर तुरन्त वहाँ से हट जाना चाहिये। परन्तु विद्या कहती है कि मित्रता भंग होने पर भी लोक–मर्यादा के लिए व्यवहार करते रहना चाहिये। इससे चित्त में राग का स्थान घेरने वाली द्वेष वृत्ति उत्पन्न नहीं होती।

अतः साधना के तार बचाने के लिए उपरोक्त कथनों व युक्तियों का सहारा लेना चाहिये क्योंकि मित्र से सम्बन्ध वृत्तियाँ चित्त में अधिक चक्कर लगाती हैं क्योंकि मनुष्य का सहज स्वभाव है कि वह अपनी हानि–लाभ, दुःख सुख, मान–अपमान आदि की भावनाओं को मित्र के सामने कहने को आतुर रहता है, जब तक ऐसा न करलें तब तक अन्य सम्बन्धियों से भी बात करने को मन इतना तैयार नहीं होता। अतः उत्तम तो यही है कि साधक के जीवन में राग–द्वेष वाली वृत्तियों को स्थान ही नहीं मिलना चाहिये तभी मन एकाग्रता की ओर बढ़ सकता है क्योंकि मन की बात मित्र से कब कहूँ, इस प्रतीक्षा में हरि चिन्तन छूट जाता है, मित्र मिलन चिन्तन लग जाता है। शायद कबीर दास जी ने साधकों के लिए ही यह बात कही है–**कबीरा खड़ा बाजार में, माँगे सबकी खैर। ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।**

अतः साधक को हर ओर से वृत्ति हटा लेनी चाहिये। फिर भी मन नहीं मानता तो मित्रता करने में शीघ्रता न करो परन्तु करो तो अन्त तक निभाओ। मित्र में ही दोष–अदोष नहीं होते। स्वयं के व्यवहार में भी कुछ कमजोरियाँ छिपी रहती है। इसलिए कभी–कभी यदि मित्र की गलती का अहसास हो तो स्वयं में उसकी जड़ का निरीक्षण करो कि कहीं उस दुर्व्यवहार का उद्गम अपने किसी दोष के कारण तो नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी अपशब्द या अनीतिकारक व्यवहार उसके मन का काँटा बन गया हो इसलिए दूसरे पर दोषारोपण से पहले अपना दोष देखकर उसे धोकर चित्त निर्मल कर लेना चाहिये तभी साधना आगे बढ़ेगी। किसी को शब्दों की मार न मारकर स्वयं को ताड़ो, फटकारो, मारो।

जिसने मरना सीख लिया है, जीने का अधिकार उसी को।
जो काँटों के पथ पर आया, फूलों का उपहार उसी को।।

अपकार पर उपकार करके मित्र को जीत लेना चाहिये। यदि मित्र में कुछ दोष होते भी हैं तो किसी के सामने नहीं कहना चाहिये और उसके दुःख का हरण करना चाहिये क्योंकि:

जो न मित्र दुख होंहि दुखारी, तिन्हिहिं विलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना, मित्र के दुख रज मेरु समाना।।

अतः स्वयं का समर्पण भी मित्रता बचा लेता है परन्तु रंगत दोनों के दिल साफ होने पर ही होती है। जब तक मित्र का दिल साफ न लगे तब तक अधिक समय तक उसके पास न टिके, समय की प्रतीक्षा करे। और दुर्भाग्य वश मित्र की मति ही फिर गयी हो तो विद्वान को चाहिये कि अब उससे अधिक सम्पर्क न साधे। न कष्ट माने न ही द्वेष वृति पाले। हाँ मिलन

अवधि कम कर दे क्योंकि—**अति परिचय से होत हैं, अरुचि, अनादर, भाय। मलयगिरि की भीलनी, चन्दन देत जलाय।** मलय पर्वत की भीलनी चन्दन का महत्व न समझकर उसे चूल्हे में ईंधन के स्थान पर प्रयोग करती है।

यदि मित्रता धोखे का जाल बन गयी हो तो रास्ता अलग करना ही उत्तम है। क्योंकि तब उस मित्रता को अपनी बेवकूफी समझना चाहिये क्योंकि दुर्जन के साथ किये गये कुछ समय के व्यवहार को 'मित्रता' जैसा पवित्र शब्द नहीं देना चाहिये। दुर्जनता की पहचान होने पर अपनी सज्जनता न छोड़ें, दुर्जन को ही छोड़ दें क्योंकि—**वह रहीम कैसे निभे, केर बेर को संग। वे डोलत रस आपने, उनके फारत अंग।।** अर्थात् दुर्जन-सज्जन एक साथ रहेंगे तो हानि सज्जन की ही होती है, दुर्जन का कुछ नहीं बिगड़ता। बेर की झाड़ी के काँटे केले की नरम पात फाड़ देते हैं, ओछे आदमी मित्र के वेश में क्या विपत्ति डाल दें कहा नहीं जा सकता। अतः चित्त को निर्लेप रखने का उत्तम तरीका है कि ऐसे व्यक्ति से न वैर करो ना प्रीत क्योंकि समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है और समाज छोड़कर जाओगे भी कहाँ। रहीम दास जी ठीक कहते है—**रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो न प्रीत। काटे चाटै स्वान के दोऊ भांति विपरीत।।** कुत्ते का काटना-चाटना दोनों ही खतरनाक है। वह चाटते-चाटते कब काट लेगा कोई नहीं जानता। अतः साधक को सभ्य व सज्जन संगति में ही बैठना चाहिये। क्योंकि कुसंग का ज्वार अवश्य फल देगा जो हितकारी नहीं होगा। **कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन। जैसी संगत बैठिये, तैसा ही फल दीन।** स्वाति की बूँद केले पर पड़ती तो कपूर बनी, सीप में गिरी तो मोती और साँप के मुख में गिरी तो विष बन गयी। इससे सिद्ध होता है कि व्यक्ति का आचरण संगति से अवश्य प्रभावित होता है।

इसका अपवाद यह बात हो सकती है—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।।

अर्थात्—सुदृढ़ चरित्र वाले पर संग-कुसंग का प्रभाव नहीं पड़ता जिस प्रकार भुजंग के लिपटे रहने पर उसकी (चन्दन की) सुगन्ध नहीं जाती।

लेकिन ध्यान रहे कि जब तक भुजंग लिपटा रहेगा तब तक उसे न काटा जा सकता, न घिसकर माथे पर लेप किया जा सकता न अंगराग तैयार किया जा सकता। जब भुजंग दूर हटाये जाते हैं चन्दन का पूर्ण उपयोग तभी होता है। अर्थात् जीवन में साधुता लाने के लिए वे अपने दिव्य गुणों से सबका परोपकार करने के लिए कुसंग से तो हटना ही पड़ेगा, हमारे दिव्य गुण हमारे व दूसरों के काम न आयें तो उनका होना न होना बराबर है। इसलिए बुरी संगत हर हाल में बुरी है।

"जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल लेता है, तब यह नहीं देखता कि कहाँ और कैसी जगह पैर रखना है। बुरी बातों में अभ्यस्त होते-होते घृणा कम होगी और बुरी बातों से-

चिढ़ भी न होगी। तुम्हारा विवेक कुण्ठित हो जायेगा और भले–बुरे की पहचान भी न रहेगी। अन्त में होते–होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः हृदय को उज्जवल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो।" *–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल*

अतः बुरे लोगों से मित्रता कभी न करो। मकदूनिया का बादशाह डेमेट्रियस जब बुरी संगत वालों से मित्रता कर बैठा तो राज्य भी चौपट कर दिया। इंग्लैण्ड के एक विद्वान को राज–दरबार में जगह न मिली तो जिन्दगी भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा क्योंकि वह जानता था कि वहाँ जो बुरे लोग थे, उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होते। बहुत से लोगों के घड़ी भर के साथ से ही बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उतने समय में ही वे ऐसी बात कह जाते हैं जिससे मन की पवित्रता का नाश हो जाता है। बुरी बातें हमारी धारणा में बहुत दिनों तक टिकती हैं। अच्छे मित्रों का पल्ला ऐसे ही पकड़े रहना चाहिये जैसे सुग्रीव ने श्री राम का पकड़ा था। दृढ़ चित्त वाला व अधिक आत्मबल वाला हमें हमारी सामर्थ्य से बाहर काम करने में हमें शक्ति प्रदान करता है। और चंचल मन वाला हमारे साथ देने वालों को भी गलत पाठ पढ़ाकर हमें और भी कमजोर बनाने की कोशिश में लगा रहता है।

निष्कर्ष तो यह निकलता है कि मनुष्य को स्वयं दृढ़वती बनने की कोशिश करनी चाहिये। ये जग है, यहाँ सभी स्वार्थी हैं कोई लौकिक, कोई आध्यात्मिक। आध्यात्मिक जगत में भी आध्यात्मिक तरीकों से स्वार्थ सिद्ध करके पतन किया जाता है। अतः गुरु ही सच्चा भाई बन्धु है *(भा०, अ०११)*। केवल ईश्वर व गुरुदेव पर ही आँख बन्द करके विश्वास किया जा सकता है, उनके भरोसे ही बल्ली छोड़ी जा सकती है–**जब नाव जल में छोड़ दी, तूफान में ही मोड़ दी। दे दो चुनौती सिन्धु को, फिर धार क्या मझधार क्या ?**

इसलिए उसे ही (हरि या गुरु) अपना मीत बनाओ। चित्त को जग वालों से खाली करके उसके (जगदीश के) लिए तैयार करो ताकि उसके दिव्य गुण हमारे चित्त में भर जायें, उसकी मित्रता में ही पूर्णतया भलाई है। अतः इतना समर्पण मित्र के आगे न करके उस परम तत्व को ही कर दो और प्रार्थना करो–

जो झुके तेरे आगे, वो सर माँगता हूँ, मुझे देखने की नजर माँगता हूँ।
मुझे चाहिये तेरी बन्दानवाजी, न घर माँगता हूँ न जर माँगता हूँ।।
न हो जाऊँ बेसुध, मैं जलवों से तेरे, इलाही मैं ऐसी नजर माँगता हूँ।
मरीजे मोहब्बत हूँ ऐ शाहे खूबाँ, मैं दवाए दर्दे जिगर माँगता हूँ।
मुझे चाहिये कुछ नहीं मेरे बिस्मिल, मैं आहों में अपनी असर माँगता हूँ।।

* * *

तूने सच्चा रास्ता बता दिया

—वेदप्रकाश शर्मा, सहारनपुर

है कृपा तेरी मेरे सतगुरू, तूने जीवन मेरा बना दिया।
मैं भटक रहा था जहान में, तूने सच्चा रास्ता बता दिया।
मैंने ढूँढा तुझको यहाँ–वहाँ, पर पता तेरा मुझको न मिला।
जब मुझको तेरा पता मिला, मुझे अपना पता तक भुला दिया।
मैं भटक रहा था जहाँन में तूने सच्चा रास्ता दिखा दिया।
तेरी वाणी में है वो दाता असर जिसको सुनकर रहता है बशर
मैंने जब से तेरी पूजा की तूने ज्ञान का दीपक जला दिया।
मैं भटक रहा था जहान में....
मेरे मन में लगी है आस यही तेरे दर्शन की है प्यास बड़ी।।
तेरे दर्शन रूपी बहार ने मेरे मन के कमल को खिला दिया।
मैं भटक रहा था जहान में....

सदा आपसे प्यार रहे !

सदा फूलता–फलता प्रभु ये याचक परिवार रहे।
रहे प्यार जो किसी से इनका, सदा आपसे प्यार रहे।।
मिथ्या कर अभिमान कभी न जीवन का अपमान करे
देव जनों की सेवा करके वेदामृत का पान करे
प्रभो आपकी आज्ञा पालन करता हर नरनारी रहे
मिले सम्पदा जो भी इनको उसको माने आपकी
घड़ी न आने पाये इन पर कोई भी संताप की
यही कामना प्रभु आप से कर हम बारम्बार रहे।
दुनियाँदारी रहे चमकती धर्म निभाने वाले हों
सेवा के साँचे में सबने जीवन अपने ढाले हों
बच्चा–बच्चा परिवार का बनकर श्रवण कुमार रहे
बने रहे संतोषी सारे जीवन के हर काल में
हाल चाल हो ऐसा इनका रहें मस्त हर हाल में
ताकि देश बसाया इनका सुखदायी संसार रहे।
जय श्री भरोसा नाम का सबको जगदीश
आशा तेरे धाम की बनी रहे मम ईश
हृदय में धैर्य धीरता सबमें करतार रहे।
विद्या–बुद्धि तेज बल सबके भीतर होय
दूध–पूत धन धान्य से वंचित रहे न कोय
आपकी भक्ति प्रेम से मन सबका सदा भरपूर रहे
राग द्वेष से चित्त सबका कोसों दूर रहे।

प्रयाग कुम्भ मेला में श्री रामनरेश पर कृपा

—केशव देव उपाध्याय वाराणसी

आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी महाराज अपने संस्कारित बच्चों को इस मायावी मिथ्या जगत से किस विधान से अपनी तरफ आकर्षित करके अपनी करुण कृपा से उसके जीवन की दशा एवं दिशा बदलकर, योगमय जीवन जीने की कला प्रदान कर देते हैं, इसकी स्पष्ट झलक गुरुभाई श्री राम नरेश विन्द जी के जीवन–चरित्र में परिलक्षित हो रही है।

भाई श्री राम नरेश विन्द जी उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद अन्तर्गत ग्राम गाधोपुर पोस्ट पैड़ापुर थाना पडरी के मूल निवासी हैं। इनके आदरणीय पिता जी का नाम श्री खदेरु विन्द जी है। श्री खदेरु विन्द जी को सात पुत्र एवं एक पुत्री है जिसमें श्री रामनरेश जी एक हैं। इस समय इनकी उम्र बयालिस वर्ष है। बी.एस.सी. स्नातक की परीक्षा पास करने के बाद इनके परिवार की आर्थिक स्थिति इस प्रकार की नहीं थी कि वे आगे बढ़ाई कर सकें। लाचार होकर इन्हें अपनी पढ़ाई बन्द करनी पड़ी तथा ये नौकरी की तलाश हेतु विभिन्न विभागों में प्रार्थना–पत्र भरने लगे। उस समय के कुछ अन्तराल बाद उन्हें एक रजिस्ट्री पत्र मिला जिसमें लिखा था कि इस तारीख को राजकीय बेसिक एल.टी. कॉलेज में आपका इण्टरव्यू शिक्षक बनने की ट्रेनिंग हेतु है। आप अपने सभी पढ़ाई सम्बन्धी प्रमाण–पत्रों के साथ उपस्थित होवें। यह इनके जीवन का प्रथम इण्टरव्यू था। यह पत्र पाकर के काफी प्रसन्न हुए परन्तु उसी क्षण यह सोचकर दुःखी हुए की हमारी सिफारिश करने वाला कोई है ही नहीं। दो दिन इसी उधेड बुन में रहने के बाद इनके मन में विचार आया कि श्री राकेश तिवारी जी, जो हमारे शुभ चिन्तन हैं एवं बदौली ग्राम के प्रधान हैं तथा जिनकी अच्छी ख्याति है। उन्हीं से एक सिफारिशी पत्र लिखवाकर इण्टरव्यू देने मैं वाराणसी जाऊँगा। इस प्रकार करने पर मैं शिक्षक बनने की ट्रेनिंग में चुन लिया जाऊँगा। समय बीतते देर नहीं लगती एवं आखिर वह दिन आ ही गया जिस दिन इन्हें इण्टरव्यू के लिए वाराणसी जाना था। उस दिन ये ब्रह्म मुहुर्त में ही नित्य क्रिया से निवृत्त हो गये एवं गम्भीर जलपान करके प्रधान जी राकेश तिवारी के घर प्रातः साढ़े सात बजे ही पहुँच गये। उचित अभिवादन के बाद श्री राम नरेश जी ने प्रधान जी से सिफारिशी पत्र लिखवा लिया एवं उसे लेकर वाराणसी में इण्टरव्यू देने के लिये यात्रा आरम्भ किये। प्रधान जी के मकान से कुछ कदम की दूरी पर हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री मनोहर मास्टर जी से श्री राम नरेश जी की मुलाकात हो गयी। प्रातः करीब आठ बजे का समय था एवं आराध्यदेव जगत नियन्ता श्री सद्गुरुदेव जी के लाड़ले बालक श्री मनोहर मास्टर जी प्रातः कालीन आरती पूजा एवं ध्यान का आध्यात्मिक नैतिक कार्यक्रम से निवृत्त होकर अपने दरवाजे पर बैठे हुए थे। सप्रेम मास्टर

साहब ने उचित अभिवादन के बाद बैठाया एवं हाल–चाल पूछा। संक्षेप में श्री राम नरेश जी ने पूरी घटना का वर्णन किया एवं बतलाया की मैं जल्दी में हूँ क्योंकि मुझे ग्यारह बजे इण्टरव्यू देने साइकिल से वाराणसी जा रहा हूँ। श्री रामनरेश जी ने प्रधान जी द्वारा लिखा पत्र भी आदरणीय मास्टर साहब को दिखलाया। मास्टर साहब ने अनमने भाव से पत्र को पढ़ा एवं पूछा, अरे भाई आप चाहते क्या हैं ? श्री राम नरेश जी ने अत्यन्त ही नम्रता के साथ निवेदन किया कि भैया ! किसी प्रकार हमारा चुनाव इस ट्रेनिंग के लिए हो जाय तो मैं इसे ईश्वर की कृपा एवं अपना परम सौभाग्य समझूँगा। आदरणीय भाई मनोहर जी ने कहा कि इस पत्र को अपनी जेब में रख लो एवं हमारे साथ आओ।

इसके बाद मनोहर मास्टर जी अपने पूजा घर में गये एवं योगेश्वर द्वय को साष्टांग प्रणाम किये एवं साथ आये श्री रामनरेश जी को भी इन योगेश्वरों के स्वरूपों को प्रणाम निवेदित करने का संकेत किये। श्री मनोहर जी ने समझाया कि हाथ जोड़कर इन स्वरूपों से अपनी मनोकामना पूर्ति के लिए मौन प्रार्थना करो। भाई श्री रामनेश जी ने अकारण दयालु परम योग–योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया। तदुपरान्त मनोहर मास्टर जी ने कहा कि अब आप सीधे इण्टरव्यू देने वाराणसी चले जाइये। श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं आपका चुनाव हो ही जाना चाहिए। श्री विन्द जी वहाँ से सीधे इण्टरव्यू होने वाले स्थान की यात्रा आरम्भ कर दिये। उनके मन में बार–बार यह बात कचोट रही थी, कि मास्टर जी ने कहा कि प्रधान वाली चिट्ठी दिखाने की आवश्यकता ही नहीं है। क्या इन दो आदमियों के फोटो के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने पर मेरा चुना जाना सम्भव है ? ये दोनों लोग यदि शरीर से सामने रहते तो बात कुछ बनने की सम्भावना बनती भी, इनके फोटो से क्या काम बनेगा। मन में इसी नकारात्मक भाव का विचार करते हुए, ये इण्टरव्यू वाले स्थान राजकीय बेसिक एल.टी. कॉलेज वाराणसी साढ़े दस बजे पहुँच गये। इण्टरव्यू आरम्भ हो चुका था एवं करीब बारह अभ्यर्थी इण्टरव्यू दे चुके थे। इण्टरव्यू दे चुके अभ्यर्थियों से इन्होंने निवेदन किया कि किस प्रकार के कैसे प्रश्न पूछे जा रहे हैं। सभी ने एक स्वर से एक ही बात बतलायी की भाई साहब, उत्तर की बात तो बाद में आती है, इण्टरव्यू लेने वाले विशेषज्ञों का प्रश्न ही समझ में नहीं आ रहा है। हम लोग तो इण्टरव्यू देकर पश्चाताप कर रहे हैं कि इस कार्य के लिए हमने बेकार ही समय, परिश्रम एवं धन गवाया। वैसे आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करिये। अभ्यर्थियों की ये बातें सुनकर इनका सांसारिक मन बिल्कुल ही उदास और निराश हो गया। इनके इण्टरव्यू का नम्बर आने में करीब तीन घण्टे का समय था, अतः इन्होंने सोचा कि बिना इण्टरव्यू दिये ही घर लौट चलें। कम से कम चार बजे सायं काल

तक अपने घर तो पहुँच जायेंगे।

मन में यही विचार पक्का कर ये अपनी साइकिल से यात्रा आरम्भ किये एवं करीब पाँच किलो मीटर दूरी तय कर लिये। गर्मी का दिन था, प्यास लगी थी, सड़क के किनारे एक दुकान के सामने साइकिल खड़ी किये तथा बिस्कुट खाकर पानी पिये तथा दुकानदार को चाय पिलाने का आदेश दिये। दुकानदार द्वारा दी गयी चाय पी रहे थे एवं इसी प्रसंग में सोच रहे थे। चाय समाप्त होते–होते इनके मनोभाव बिल्कुल बदल गये एवं इन्होंने सोचा कि हमारा चयन हो या न हो हमें इण्टरव्यू तो दे ही देना चाहिये। अतः चाय पीने के बाद में फिर पाँच किलोमीटर चलकर इण्टरव्यू होने वाले स्थान पर पहुँच गये। इनके वहाँ पहुँचने के मात्र पन्द्रह मिनट बाद इण्टरव्यू के लिए इनका नाम पुकारा गया। ये अपने सभी शैक्षिक प्रमाण–पत्रों के साथ इण्टरव्यू कक्ष में प्रवेश किये। इण्टरव्यू कक्ष में तीन विशेषज्ञ बैठे थे। जिसमें दो पुरुष एवं एक महिला थी। महिला की उम्र करीब पचास वर्ष की थी। यथोचित अभिवादन के बाद महिला ने प्रश्न किया कि आपकी शैक्षिक योग्यता क्या है ? श्री विन्द जी ने उत्तर दिया कि मैंने फिजिक्स, कमेस्ट्री एवं मैथ में स्नातक की शिक्षा प्राप्त किया है। महिला ने प्रश्न किया कि अच्छा ! मैथ से आपने ग्रेजुएशन किया है ? इन्होंने उत्तर दिया कि हाँ ! मैंने मैथ से भी ग्रेजुएशन किया है। उस महिला ने प्रश्न किया कि दशमलव दो में दशमलव दो का गुणा किया जाय तो कितना होगा। इन्होंने उत्तर दिया दशमलव शून्य चार। इसके पश्चात् दूसरे विशेषज्ञ ने फिजिक्स का प्रश्न किया एवं इन्होंने तत्काल उसका सही उत्तर दे दिया। महिला ने फिर प्रश्न किया कि दस सेण्टीमीटर का एक पौधा है एवं दशमलव तीन सेण्टीमीटर नित्य बढ़ रहा है, दस दिन में उसकी लम्बाई कितनी हो जायेगी, इन्होंने तत्काल उत्तर दिया कि पौधा तेरह सेण्टीमीटर लम्बा हो जायेगा। इसके बाद तीसरे विशेषज्ञ ने कहा किआपका एक विषय कमेस्ट्री भी रहा है, बतलाइये, ...।उसकी बात को बीच में काटते हुए महिला ने कहा कि भाई साहब तीन ही प्रश्न पूछने थे एवं अभ्यर्थी ने तीनों प्रश्नों के उत्तर बिल्कुल ठीक बतलाये हैं, अतः अगला प्रश्न पूछा अन्याय होगा। महिला की यह बात समाप्त होते ही तीनों विशेषज्ञ ठहाका लगाकर हँसने लगे। इसके बाद महिला ने आत्मीयता भरे वाक्यों में कहा, "जाओ बेटा ! तुम्हारा इण्टरव्यू समाप्त हो गया।" उसकी यह बात सुनकर ये कक्ष से बाहर निकल आये।

अट्ठासी–नवासी के सत्र में जून में इन्हें एक रजिस्ट्री मिली जिसमें लिखा था कि एल. टी. ट्रेनिंग के लिए आपका चुनाव कर दिया गया है। आज जुलाई की अमुक दिनांक को राज्य शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद इलाहाबाद में ट्रेनिंग के लिए उपस्थित होकर ट्रेनिंग आरम्भ कर दें। ये अपने घर से चलकर ट्रेनिंग कॉलेज पहुँच गये। दो–दो ट्रेनीज का बैच बना जो एक

साथ रहकर ट्रेनिंग प्राप्त करेंगे। इनके रूम पार्टनर का नाम श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव था तथा वह मध्य प्रदेश के ललितपुर जनपद का निवासी था। ये दोनों साथ रहकर ट्रेनिंग लेना आरम्भ कर दिये। समय बीतता गया एवं जनवरी का महिना आ गया। इन दिनों इलाहाबाद के संगम क्षेत्र में माघ मेला लगा हुआ था एवं इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाला प्रत्येक अखबार (न्यूज पेपर) "संगम की रेती" नामक शीर्षक से अपने एक पन्ने पर माघ मेला का पूरा वर्णन किया करता था। ये दोनों साथ रहने वाले एवं ट्रेनिंग करने वाले इस शीर्षक को बड़े ही उत्सुकता से पढ़ते थे। इन्हीं दिनों श्री विन्द जी ने अपने मित्र श्रीवास्तव से प्रश्न किया कि माघ मेला तुमने देखा है कि नहीं। उसने कहा कि नहीं। श्री विन्द जी ने कहा कि भाई हमने भी नहीं देखा है। बड़ी दूर–दूर के सन्त महात्मा एवं पुण्यात्मा इस संगम क्षेत्र में आये हुए हैं, हम लोगों को भी चलकर इस पुण्य क्षेत्र का दर्शन करना चाहिए। श्रीवास्तव जी भी आस्तिक परिवार के थे क्योंकि उन्होंने कहा कि हमारे माता पिता कहा करते हैं कि इस माघ मेला में सिद्ध, योगी एवं महात्मा आते हैं जिसके आशीर्वाद से प्राणी मात्र की मनोकामना पूर्ण हो जाती है। अपने मित्र के मुख से सिद्ध एवं योगी मेला में आते हैं यह बात सुनकर श्री राम नरेश जी की उत्सुकता और बढ़ी एवं इन दोनों ने प्रातः काल आठ बजे ही माघ मेला क्षेत्र में जाने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन प्रातः काल ये दोनों बालक राज्य शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद् इलाहाबाद से माघ मेला की यात्रा आरम्भ किये एवं लगभग दस बजे मेला क्षेत्र में पहुँच गये एवं अपनी बुद्धि से सिद्ध एवं योगियों को ढूढ़ते रहे परन्तु कोई नहीं मिल सका। सायंकाल करीब साढ़े पाँच बज गया। चूँकि ट्रेनिंग कॉलेज का मुख्य गेट सायं आठ बजे बन्द हो जाता था अतः दोनों ही तेजी से पैदल चलकर समय के अन्दर स्कूल में प्रवेश कर गये। इन लोगों ने मैस में खाना खाया एवं फिर सो गये। दूसरे दिन फिर प्रातः काल ये दोनों उसी समय स्कूल से निकल माघ मेला पहुँच गये। मेला क्षेत्र में पहुँचने पर इन दोनों ने आज फिर सिद्ध एवं योगियों की खोज आरम्भ कर दी। ये सायंकाल पाँच बजे तक ढूढ़ते रहे परन्तु इन्हें कोई सिद्ध या योगी दिखलायी नहीं दिया। आज इन लोगों ने एक कैम्प का विधिवत् दर्शन किया जिसमें करीब–करीब सभी देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर रखी गयी थी। मूर्तियाँ बहुत ही आकर्षक, मनोहारी एवं ईश्वरीय प्रेम एवं श्रद्धा पैदा करने वाली थी। इन मूर्तियों के निर्माता से भी इन लोगों ने बात की जो दक्षिणी भारत का था एवं उसकी प्रशंसा की। ये लोग संगम क्षेत्र भी गये एवं वहाँ नाव में बैठकर पवित्र संगम क्षेत्र का आनन्द लिये। सायंकाल ये दोनों माघ मेला क्षेत्र से, अपने ट्रेनिंग सेन्टर स्कूल के लिये यात्रा आरम्भ किये। ट्रेनिंग स्कूल पहुँचकर इन लोगों ने वहाँ रात्रि निवास किया। रात में ये दोनों लोग माघ मेला के सम्बन्ध में बात करते हुए काफी समय तक जगते

रहे। श्रीवास्तव जी ने कहा कि भाई काफी पढ़ाई नुकसान हो रही है, अब माघ मेला जाने का कार्य हम लोग बन्द कर दे, इसी में भलाई है। उनकी बात समाप्त होते ही श्री राम नरेश विन्द जी ने कहा कि भैया ! मैं कल भी जाऊँगा एवं अपनी पूरी लगन एवं निष्ठा से मेला में आये हुए सिद्ध एवं योगी महापुरुषों की खोज करूँगा। यदि कोई सिद्ध या योगी मेला में है तो मैं उसे अवश्य ही ढूढ़ निकालूँगा एवं नहीं मिला तो मैं समझ जाऊँगा कि सब कपोल कल्पित बाते हैं, एवं यह मेला भोले–भाले श्रद्धालु हिन्दुओं से पैसा वसूलने का कपट भेषधारी साधु–महात्माओं का नियोजित भीड़ मात्र है।

तीसरे दिन प्रातः काल साढ़े सात बजे ही ये नास्ता करके प्रयाग माघ मेला क्षेत्र की तरफ चल दिये एवं करीब नौ बजे संगम क्षेत्र में पहुँच कर सिद्ध एवं योगी महापुरुषों की खोज आरम्भ किये। ये दिन भर ढूढ़े, सायं काल छः बज गया परन्तु जिसकी खोज थी वह कोई भी नहीं मिला। ये बन्धे के करीब आ गये एवं दूसरे रास्ते से आज स्कूल पहुँचने की यात्रा आरम्भ किये। दूसरे रास्ते पर ये मात्र अभी दो फर्लांग ही गये होंगे कि इन्हें एक कैम्प दिखलायी दिया। कैम्प के अन्दर विराजमान स्वरूप मुख्य सड़क से ही स्पष्ट नजर आ रहा था। इनके मन में स्वरूप का दर्शन बिल्कुल करीब से करने की भावना तीव्र हो गयी एवं ये स्वरूप के बिल्कुल करीब जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना किये। स्वरूप को देखते ही इनकी आँखों से अविरल अश्रुपात होने लगा एवं ये पन्द्रह मिनट तक इसी स्थिति में रहे। उस पण्डाल में दो साधक और एक आगन्तुक उपस्थित थे। आगन्तुक ने प्रश्न किया कि श्री गुरुदेव जी महाराज यहाँ कब आयेंगे तो साधक द्वय ने बतलाया कि कल प्रातः नौ बजे उन्होंने आने को कहा है उन्हीं साधक द्वय में से एक ने कहा कि अरे भाई, वे लीलाधारी है, वे कब आयेंगे, यह तो कृपानिधान ही जाने। यह बातचीत श्री विन्द जी बिल्कुल ही एकाग्रचित्त होकर सुन रहे थे।लीलाधारी शब्द पर इनका मन अटक गया और ये सोचने को बाध्य हो गये कि कोई ईश्वरीय शक्तियों से ओत–प्रोत महात्मा है, अतः हमें कल प्रातः काल नौ बजे आकर इनका दर्शन अवश्य करना चाहिये। इसी समय दो आदमी श्री गुरुदेव के प्रयोग के लिये जल लाने हेतु इस कैम्प से दारागंज अलोपीबाग की तरफ दो बड़े–बड़े पीतल के हण्डे (घड़ा) लेकर चल दिये। श्री विन्द जी भी उनके पीछे–पीछे चल दिये। करीब एक फर्लांग जाने के बाद, एक आदमी जो करीब साठ वर्ष का प्रतीत हो रहा था, उससे श्री विन्द जी ने कहा कि दादा जी, यदि आपका आदेश हो तो यह घड़ा जल के लिए मैं लेकर चलूँ। उस महात्मा ने कहा कि कैम्प से ही एक घड़ा और लेते जाओ। इन्होंने नम्रता पूर्वक निवेदन किया कि मैं रास्ता भूल जाऊँगा। उस वृद्ध साधक ने कहा कि कभी वजन ढोये हो या नहीं। श्री विन्द जी ने कहा कि बाबा जी मैं बोझा ढोने में समर्थ हूँ। इसके बाद उस वृद्ध

साधक ने अपना घड़ा इन्हें पकड़ा दिया एवं कहा कि ब्रह्मचारी जी के मान–सम्मान का ध्यान रखते हुए ये उनसे करीब दस–बारह कदम पीछे की दूरी पर चल रहे थे। इस यात्रा में एक समय ऐसा भी आया कि ब्रह्मचारी जी एक सड़क पार करके आगे बढ़े, तब तक सड़क पर ट्रक आ गयी एवं उसके चले जाने के बाद श्री राम नरेश जी जब आगे बढ़े तो इनके एवं ब्रह्मचारी जी के बीच करीब पचास फीट की दूरी हो गयी। ये तेजी से आगे बढ़ रहे थे उसी समय एक खूबसूरत औरत ने इनका हाथ पकड़ कर कहा कि, "घड़ा बेचोगे ?" ये असमंजस में पड़ गये एवं तत्काल झटके से औरत से अपना हाथ छुड़ाकर चल दिये। इन्होंने चन्द मिनटों में ब्रह्मचारी जी का साथ पकड़ लिया। कुएँ पर पहुँचकर खूब अच्छी प्रकार से तीनों घड़ों को साफ किये एवं उसमें पानी भरें क्योंकि तब तक तीसरा घड़ा लेकर तीसरे व्यक्ति भी पहुँच चुके थे। सबके साथ पानी लाकर कैम्प में रखे एवं उसके बाद दिव्य स्वरूप को प्रणाम किये एवं अपने ट्रेनिंग कॉलेज पहुँच गये। रात्रि के करीब साढ़े नौ बज रहे थे। यद्यपि ट्रेनिंग स्कूल का मुख्य दरवाजा बन्द था परन्तु किसी प्रकार युक्ति लगाकर ये दरवाजा खोलवाये एवं अपनी कोठरी में पहुँच गये। रात्रि में इन्हें नींद नहीं आयी और यही सोचते रहे कि इस आश्रम के लीलाधारी गुरुदेव का दर्शन कल होगा तो अगाध आनन्द मिलेगा।

अध्यात्म जिज्ञासु साधकों को यह उत्सुकता होना स्वभाविक ही है कि वह दिव्य स्वरूप किसका है, कैम्प कौन–सा है, एवं श्री गुरुदेव के लिये जल लाने वाले कौन है ? वह कैम्प जिसमें यह दिव्य स्वरूप विराजमान था का नाम है, "श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, प्रयाग माघ मेला कैम्प कार्यालय, रामानुज मार्ग संगम क्षेत्र इलाहाबाद" उस कैम्प में विराजमान बड़ा स्वरूप जिसके सामने श्री विन्द जी अनायास ही आकर्षित होकर प्रणाम निवेदित किये और किसी का नहीं बल्कि अकारण दयालु, परम करुणा निकेतन, अखिल ब्रह्माण्ड नायक और परम योग योगेश्वर हमारे आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का ही था। श्री गुरुदेव भगवान के लिए पवित्र एवं शुद्ध जल ले आने वाले एक थे सेवाभाव के प्रतीक, सबसे समान प्रेम करने वाले हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री दशरथ तिवारी जी एवं दूसरे ब्रह्मचारी जो जटा–जूट धारी थे, का नाम है सरकार ब्रह्मचारी। श्री विन्द जी के लिए लीलाधारी नाम से सम्बोधित किये जाने वाले महात्मा और कोई नहीं वरन हमारे, आपके एवं प्राणीमात्र के भाग्य विधाता हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ही है।

आज श्री विन्द जी का माघ मेला संगम क्षेत्र प्रयाग में सिद्ध एवं योगियों की खोज का चौथा दिन था। अतः नित्य क्रिया से जल्दी ही निपटकर ये करीब पौने नौ बजे लीलाधारी के कैम्प पहुँच गये। इन्होंने कैम्प में पहुँच कर दादा गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज को साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद श्री गुरुदेव के दर्शनार्थ आगे बढ़े। श्री गुरुदेव अपनी पर्णकुटी

के सामने चौकी पर विराजमान थे। एक पल के लिए करीब दस कदम की दूरी से इन्होंने श्री गुरुदेव का दर्शन किया एवं हाथ जोड़कर प्रार्थना किये। इसके बाद इनकी आँखें स्वयं बन्द हो गयी एवं उस स्थान पर अगाध पारदर्शी प्रकाश दिखलायी देने लगा। देखते–देखते वही प्रकाश धवल कमल के बड़े आकार के रूप में दिखलायी देने लगा एवं इनका शरीर जड़वत हो गया। करीब आधे घण्टे बाद इनकी सामान्य स्थिति बनी। सामान्य स्थिति होने पर इन्होंने देखा कि श्री गुरुदेव वहाँ उपस्थित नहीं थे। अनाथनाथ भोजनालय के समीप खड़े हैं, चौदह पन्द्रह साधक उन्हें घेरे हुए हैं एवं वे उनसे बात कर रहे हैं। श्री विन्द जी तत्काल वहाँ से उठे एवं उन्हें साष्टांग प्रणाम किये। इतना करते–करते उन्हें रुलायी आ गयी एवं ये फूट–फूट कर रोने लगे। श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखार बिन्दु से कहा कि देखो ! यह लल्ला, चार दिन से लगातार सिद्ध एवं योगी की खोज कर रहा था। श्री प्रभुजी की कृपा से इसे सिद्ध महापुरुष का दर्शन हो ही गया। फिर गुरुदेव भगवान ने अपने कर कमलों से इन्हें उठाया एवं कहा कि लल्ला रोते नहीं। तुम्हारी तो मनोकामना पूर्ण हो गयी, तुम्हें तो सिद्ध पुरुष के दर्शन हो गये। श्री गुरुदेव की इस अमोघ वाणी को सबसे गहरायी से केवल श्री विन्द जी ही समझ रहे थे। इसके बाद श्री गुरुदेव जी अपनी पर्णकुटी में आ गये। उनके पर्णकुटी में पहुँचने के साथ ही वे भी पर्णकुटी में चले गये एवं दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना किये। श्री मुख ने आदेश दिया, हाँ लल्ला दीक्षा ले लो। इसके बाद ये पर्णकुटी से बाहर आये एवं आदरणीय श्री दशरथ तिवारी जी से प्रार्थना किये कि भैया दीक्षा में क्या–क्या सामान लगता है। उन्होंने तत्काल ही प्रश्न किया कि कहाँ के रहने वाले हो एवं तुम्हारी जाति क्या है। श्री विन्द जी ने प्रार्थना किया कि महाराज मैं मीरजापुर जिले के माधोपुर गाँव का निवासी हूँ तथा विन्द (मल्लाह, केवट) जाति का हूँ। आदरणीय श्री तिवारी जी ने कहा कि गुरुदेव मल्लाह (केवट, विन्द) को दीक्षा नहीं देते है।

तिवारी जी के मुख से ये बातें सुनकर श्री राम नरेश जी दुखी होते हुए प्रार्थना किये, भैया ! गुरुदेव ने हमें दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान कर दी है। श्री तिवारी जी ने भाई विन्द जी से अपनी बात कहने के लिये बार–बार क्षमा याचना की एवं उन्हें दीक्षा लेने हेतु सामान नोट करा दिये। उस समय विन्द जी की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी एवं उनके पास मात्र दस रुपया ही था। वे दीक्षा का सामान मात्र पाँच रुपये में खरीदे। एक रुपये की दो छोटी–छोटी माला, एक रुपये रोरी, रैक्षा सूत्र एवं दो रुपये अन्य आवश्यक सामान खरीद कर झोले में छिपाकर लाये। वे सीधे श्री गुरुदेव के पर्णकुटी में प्रवेश कर गये एवं श्री गुरुदेव को प्रणाम किए। श्री गुरुदेव ने उन्हें आशीर्वाद दिया। उस पर्णकुटी में श्री दशरथ तिवारी जी श्री गुरुदेव की तरफ मुख करके श्री गुरुदेव भगवान के मुखारविन्द को निहार रहे थे। इसी समय एक महिला ने पर्णकुटी में प्रवेश करके श्री गुरुचरणों में प्रणाम कर प्रार्थना किया कि महाराज जी दीक्षा लेने में

किन–किन सामानों की आवश्यकता पड़ेगी। श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ गम्भीर मुद्रा में कहा कि लल्ली दीक्षा में तो बहुत सामान की आवश्यकता पड़ती है। तुम दीक्षा लेना चाहती हो तो पाँच किलो बड़ा–बड़ा फर्स्ट क्लास का सेब, सोलह किलो की सन्तरे की पेटी, बढ़िया ग्यारह किलो की फलाहारी मिठाई, एक जोड़ा सुपर फाइन धोती, गाँधी आश्रम की बड़ी–बड़ी दो तौलियाँ, रेशम के कुर्ता का कपड़ा, पशमीने की शाल, फूल का बर्तन सेट, चार अदद बढ़िया गुलाब का माला, चलो गुलाब की माला न मिल सके तो बड़ी–बड़ी गेंदे के फूल का गजरा वाला चार माला, अक्षत, रोरी, चन्दन एवं पाँच हजार एक रुपया, ग्यारह हजार रुपया, इक्यावन हजार रुपया जैसी तेरी श्रद्धा हो दान में दे देना। उस महिला ने धीरे से कहा कि महाराज जी दीक्षा तो बहुत महंगी है। श्री गुरुदेव ने कहा, "लल्ली ! घोर कलिकाल का समय चल रहा है, जब संसारिक चीजे इतनी महंगी है तो दीक्षा तो आध्यात्मिक शक्ति है महंगी होना स्वभाविक ही है।" उस महिला ने कहा कि हाँ महाराज जी ! बात तो आप सही कह रहे हैं। श्री गुरुदेव भगवान के मुखारविन्दु से परिहास के उपरोक्त वाक्यों को सुनकर श्री राम नरेश जी के पैर के नीचे की जमीन ही खिसक गयी, वे जाड़े के मौसम में पसीने से तर–बतर हो गये एवं मन ही मन श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में प्रणाम करके अपना झोला सम्भालते हुए पर्णकुटी से बाहर निकल गये।

वह महिला श्री गुरुदेव की बात सुनकर बहुत उदास हो गयी थी अतः उसके सिर पर अपना वरदहस्त फेरते हुए श्री मुख ने अपनी ओजस्वी वाणी में मधुर मुस्कान के साथ तेज आवाज में कहा, "लल्ली ! दीक्षा में किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। मात्र एक पुष्प, या पुष्प की कुछ पंखुड़िया अथवा तुलसी का एक पत्ता ही पर्याप्त है।" श्री गुरुदेव की पर्णकुटी से निकलकर, अपने ट्रेनिंग कॉलेज की यात्रा पर निकले श्री राम नरेश जी के कानों में श्री गुरुदेव के ये शब्द बिल्कुल स्पष्ट सुनायी दिये क्योंकि अभी ये श्री प्रभु दरबार तक ही पहुँचते थे। वे बहुत आनन्दित हुये एवं अपना झोला लेकर श्री गुरुदेव के चरणों में दीक्षा के लिये प्रार्थना किये। उनकी प्रार्थना सुनकर श्री गुरुदेव भगवान ने आदरणीय श्री दशरथ तिवारी जी को दीक्षा की तैयारी करने का आदेश दिया जिसे श्री तिवारी जी ने चन्द मिनटों में पूरा कर दिया। तदुपरान्त अनाथनाथ ने योग दीक्षा देकर श्री रामनरेश विन्द जी को निहाल कर दिया। ऐसे ही गुरुकृपा के चरित्रों को स्मरण कर किसी भक्त कवि ने कहा कि.....

कब क्या करोगे हे जनार्दन, जानते हो सब तुम्ही।
ये ठाट है जितने जगत के, ठानते हो सब तुम्ही।।
केशव तुम्हारे कार्य सारे, सब प्रकार विचित्र है।
सब नेति-नेति पुकार कर, गाते पवित्र चरित्र है।।

* * *

समर्पण गीत

राजेश कुमार बलिया

जड़ चेतन के स्वामी मुझको दूर असत से रखना
निर्मल करना काया मेरी, मन मन्दिर में रहना।

पग-पग पर ठोकर खाकर यूँ
सम्भला न था अब तक मैं,
कोई मेरा दर्द न जाना,
दूर था तुमसे जब तक मैं;
तुम ही मेरी मंजिल गुरुवर, तुही मेरा गहना,
निर्मल करना.....

अरमां मेरा ऊँचा कितना
मैं कितना नादान हूँ
सोने का घर खोज रहा
मैं मिट्टी का सामान हूँ;
गुरुवर केवल एक नाम, अब तो सदा ही रहना
निर्मल करना.....

मोह माया का बंधन तोड़ा
गोद में आप बिठाकर के,
ज्ञान की ज्योति जलायी तुमने,
योग की राह दिखाकर के;
मन के आसन पर प्रभु बैठे, राजेश अब क्या कहना
निर्मल करना....

हठयोग का हठी : योगी संसार सिंह

—गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार सिंह एक क्षत्रिय बालक था उसका जन्म जम्बू प्रान्तान्तर्गत शहर कटरे के पास किसी गाँव में हुआ। उसका अध्ययन काल कुछ कटरा में और उसके बाद जीन्द हरियाणा के पास जिला संगरुर में होता रहा। पठन काल में ही यह बच्चा हमारे पास आ गया था एवं योग दीक्षा ले ली थी किन्तु योग दीक्षा ले लेने के बाद भी इस के मन में तीव्रतम इच्छा थी कि यह शास्त्रीय विधि से नियमानुसार यम नियम आदि अष्टांगयोग की साधना करता हुआ विधि विधान पूर्वक हठयोगी बने क्योंकि इसने हठयोग की महिमा अच्छे–अच्छे लेखकों की पुस्तकों में बहुत अधिक मात्रा में पढ़ी थी इसलिए संसार सिंह पूरे–पूरे विधिविधान पूर्वक हठयोग की साधना करना चाहता था। यह बच्चा हठयोग का अधिकारी भी था। आज कल के रसिकता के युग में इसका ब्रह्मचर्य जीवन बहुत ही उत्तम था स्कूल और कॉलेजों के अन्दर अध्ययन करते हुए भी रसिकता का कोई प्रभाव इसके मन पर नहीं था। इसका रहन–सहन बहुत ही सरल एवं सादा था। इसने अपने अध्ययन काल में ही संवाई आश्रम श्री सिद्धगुफा पहुँच करके अत्यन्त विनम्र भाव से प्रार्थना की कि हे गुरुदेव ! आप मुझे प्राणायाम की शिक्षा दीजिए मेरी बहुत ही प्रबल इच्छा है कि मैं प्राणायाम करूँ और प्राणायाम का जो फल होता है उसको मैं अपनी साधना से प्राप्त करूँ। हमने अपने उस योग्य अधिकारी बच्चे की प्रार्थना को सुनकर उस बच्चे को समझाया और कहा कि संसार सिंह तुम प्राणायाम के अधिकारी तो अवश्य हो किन्तु इसमें पैसे की तो बहुत आवश्यकता होगी। तुम्हारे घी और दूध का प्रबन्ध कैसे हो पाएगा। हमारे पास रह करके तुम केवल मात्र भोजन कर सकते हो। अतः विशेष व्यय की व्यवस्था तुम सोचसमझकर स्वयं करो। उस सुपात्र बालक ने कहा कि अच्छा गुरुदेवजी अबकी बार में रुपए की भी व्यवस्था करके आऊँगा। यह कहकरके वह बच्चा तत्काल वापिस लौट गया और इधर–उधर की शिफारिसें कराके उसने फौज सेना में नौकरी करली थी। जिसके फलस्वरूप दो या तीन वर्ष में ही लगभग सात या आठ हजार रुपया इकट्ठा कर लिया। लगभग तीन या चार वर्ष के बाद एक घी का कनस्तर ले करके और लगभग आठ हजार रुपया साथ ले करके पुनः हमारे पास आया और अपनी प्राणायाम करने की प्रबल इच्छा को उसने पुनः प्रगट किया। उसकी तीव्र लगन को देखकरके उसको हमने भगवान शंकर के पंचाक्षरी मंत्र का विधि विधान पूर्वक पाँच अनुष्ठान करने की आज्ञा दी। वह पाँच अनुष्ठान भी ऋषिकेश में जंगली झाड़ियों में रह करके गंगा किनारे बैठकर उसने सर्दी गर्मी व वर्षा को सहन करके पूरे कर लिए। उन दिनों हमारा योग प्रचार कार्यक्रम हरियाणा में जिला करनाल के अन्तर्गत सालवन गाँव में चल रहा था। संसार सिंह वहीं पहुँचा हमने इस बच्चे की तीव्रतम प्रबल इच्छा को समझकर दशाश्वमेघ तीर्थ पर अवस्थित अपने आश्रम में त्रिबंध सहित प्राणायाम् का उपदेश किया। आयुष्मान संसार सिंह ने हमारी शिक्षा को पाकर के तत्काल ही प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया और यह अधिकारी बालक तत्काल जम्बू कटरा अपने स्थान को वापिस चला गया। वहाँ रहकर इसने अपने एकान्त कमरे में बैठकर प्राणायाम करना आरम्भ किया। (क्रमशः)

परम ऋषि कपिल मुनि

कतिपय विद्वानों ने सांख्य दर्शन के प्रवर्तक परमऋषि कपिल मुनि पर अनीश्वरवादी होने का दोषारोपण किया है। इन विद्वानों ने इस सम्बन्धी आरोप के दो कारण बताए हैं।

इन विद्वानों का कथन है कि कपिल मुनि ने समस्त सृष्टि की रचना का कारण प्रकृति की विषमावस्था को बतलाया है। सृष्टि की रचना में ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। अतः कपिल मुनि अनीश्वरवादी हैं। परन्तु उन्होंने इस पर कभी विचार नहीं किया कि चेतनतत्व अर्थात् ईश्वर की सत्ता से ही अव्यक्त मूल प्रकृति उसी प्रकार सृष्टि की रचना करती है, जिस प्रकार बिना इच्छा वाले चुम्बक के समीप स्थित रहने मात्र से लोहा आप से आप क्रियाशील हो जाता है। यही बात भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं:

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तने।।९/१०

अर्थात् सृष्टि की रचना प्रकृति ही भगवान की चेतन सत्ता मात्र से करती है। यद्यपि परमात्मा स्वयं सृष्टि की रचना नहीं करता है फिर भी उसी की ही सत्ता स्फूर्ति से प्रकृति सृष्टि की रचना करती है। इस प्रकार ईश्वर में न कर्तव्य है और न अकर्तव्य ही है। ईश्वर इच्छा रहित होने से अकर्त्ता तथा सानिध्य मात्र से कर्त्ता है।

न कर्त्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।। गीता ५/१४

अर्थात् ईश्वर भूत–प्राणियों के न कर्त्तापन को और न कर्मों तथा कर्मों के फल के संयोग की रचना करता है; किन्तु ईश्वर की सन्निधि मात्र से चुम्बक और लोहे की भाँति स्वभावस्तु अर्थात् प्रकृति ही सृष्टि की रचना करती है। अर्थात् गुण ही गुणों में बर्त रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जिन योगियों के अन्तःकरण का अज्ञान विवेकज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है, उनका वह ज्ञान सूर्य के समान उस पर ब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को हृदय में प्रकाशित करता है अर्थात् साक्षात करता है।

विद्वान लोग कपिल मुनि पर अनीश्वरवादी होने का दूसरा आरोप यह लगाते हैं कि सांख्य दर्शन के सूत्र १/९२ **"ईश्वरासिद्धे"** के अनुसार ईश्वर असिद्ध है अर्थात् ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। परन्तु उन्होंने इस सूत्र का शुद्ध आशय न समझकर कपिल मुनि पर अनीश्वरवादी होने का आरोप लगाया है।

"ईश्वरासिद्धे" सूत्र प्रथम अध्याय के प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रसंग में आया है। इससे पूर्व सांख्य दर्शन के सूत्र १/८९ **"यत्सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञान तत्प्रत्यक्ष"** में प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण बताया है। जिसके अनुसार इन्द्रियों की सन्निधि से प्राप्त हुआ जो उस विषय के आकार का चित्र खींचने वाला विज्ञान (चित्त की वृत्ति) है। वह प्रत्यक्ष कहलाता है।

इस प्रकार सूत्र ६/८९ का लक्षण केवल बाह्य प्रत्यक्ष का है, किन्तु **"योगिनाम बाह्य प्रत्यक्षत्वाः दोष"** (सूत्र ६/६०) के अनुसार योगियों का इस प्रकार का ज्ञान बाह्य नहीं होता

है। उनको तो आभ्यान्तर प्रत्यक्ष होता है।

सूत्र "ईश्वरासिद्धे" के अनुसार ईश्वर के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्रकृति के क्षेत्र अन्तकरण के द्वारा नहीं होता है। अर्थात् चित्त वृद्धि ईश्वर के शुद्ध स्वरूप के तदाकार नहीं हो सकती; क्योंकि चित्त वृत्ति मन या चित्त का स्वभाव है तथा चित्त प्रकृति का अंश है। प्रकृतिजड़ होने से चेतन पुरुष या ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं करा सकती है। जिस प्रकार भौतिक पदार्थों का साधारण मनुष्यों का बाह्य प्रत्यक्ष से और योगियों को सूक्ष्म पदार्थों का आभ्यन्तर प्रत्यक्ष से ज्ञान होता है। इस कारण ईश्वर का इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है।

अतः "ईश्वरासिद्धे" का तात्पर्य यह है कि योगी ईश्वर का साक्षात्कार तब तक नहीं कर सकता जब तक वह विवेक ख्याति की श्रेणी में नहीं आ जाता है। इस स्थिति में उसका अन्तःकरण पूर्णरूपेण शुद्ध हो जाता है।

कपिल मुनि के "तत्व समास" के जड़ तत्व के दो भेद माने गये हैं।

अष्टौ प्रकृतयः सूत्र २

षोडस विकाराः सूत्र ३

जड़ प्रकृति के प्रथम भेद में आठ प्रकृतियां हैं। (१) मूल प्रकृति (२) महत्तत्व (३) अहंकार (४) पांच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) हैं।

जड़ प्रकृति के दूसरे भेद में सोलह विकृतियां हैं। ये विकृतियां अहंकार और तन्मात्राओं के विकार से उत्पन्न हुई हैं। पाँच तन्मात्राओं से क्रमशः पाँच स्थूल भूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) उत्पन्न हुई। अहंकार के सतोगुण से पांच ज्ञानेन्द्रियों (कान, त्वचा, आंख जीभ, और नाक) की उत्पत्ति हुई। अहंकार के रजोगुण से पाँचक कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर, वाक, गुदा और उपस्थ) की उत्पत्ति हुई तथा अहंकार के सतोगुण से मन की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार से सोलह विकृतियां उत्पन्न हुईं। अथवा समष्टि जगत और व्यष्टि जगत की उत्पत्ति हुई।

योगी सर्व प्रथम योग दर्शन सूत्र "योगश्चित्त वृत्ति निरोध" के अनुसार अपने चित्त को धारणा ध्यान और समाधि के द्वारा वश में करता है। उसके उपरान्त कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों, पाँच भूतों एवं आठों प्रकृतियों का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार योगी प्रकृति के इन अवान्तर भेदों का अनुभव करने के बाद जो चेतन तत्व रह जाता है, उसका साक्षात्कार करता है। यह चेतन तत्व ही पच्चीसवां तत्व है जिसको ईश्वर कहते हैं या पुरुष कहते हैं।

पुरुषः सूत्र ४

इस पच्चीसवें चेतन तत्व का वर्णन सूत्रकार में "पुरुष" कहकर किया गया है। यह चेतन तत्व शुद्ध ज्ञान स्वरूप है और जड़ तत्व से विलक्षण है। चुम्बक और लोहे के समान इसी चेतन तत्व की सन्निधि से जड़ तत्व में क्रिया हो रही है, जिसको प्रकृति–विकृति रूप से अष्टधा प्रकृति और षोड़सा विकृति कहते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि परम ऋषि कपिल मुनि शुद्ध ईश्वरवादी है जिसकी पुष्टि भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के दसवें अध्याय में **"सिद्धानां कपिलो मुनि"** कहकर की है।

* * *

धर्मग्रन्थ हमारे प्रत्यक्ष देवता

डॉ० रामचरणजी महेन्द्र

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः

ईश्वर और देवताओं को स्वयं हमने अपने चर्मचक्षुओं से नहीं देखा है, पर यदि संसार में उन्हें प्रत्यक्ष देखना हो, तो वे उत्तमोत्तम पवित्र धर्मग्रन्थों के रूप में देखे जा सकते हैं। धर्म-पुस्तकें मनुष्य के अन्दर बैठे हुए परमात्मा के बाह्य रेखाचित्र हैं। उत्तमोत्तम धर्मग्रन्थों में बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों, ज्ञानी-संतों, महाकवियों, महान् चिन्तकों, दार्शनिकों, विचारकों और गण्य-मान्य मनोवैज्ञानिकों के बहुमूल्य अनुभव, मौलिक उपयोगी विचार भरे पड़े हैं, उनमें व्यावहारिक आत्मोपदेश की अमूल्य शिक्षा है, मानवीय समस्याओं और सम्बन्धों पर प्रत्यक्ष योजनाएँ हैं, निगूढ गुत्थियों के हल है।

मानवजीवन बड़ा विस्तृत, विचित्र, द्वन्द्वात्मक और रहस्यमय है। इसमें संत और दुष्ट, सज्जन और दुर्जन, शान्त और अतृप्त, दानी और चोर, संयमी और दुराचारी—सभी प्रकार के मनुष्य भरे पड़े हैं। जीवन में धर्म का महत्व आज सभी जिम्मेदार और दूरदर्शी लोग मानते हैं। जान या अनजान में अपने व्यवहार में हमसे बहुत-सी गलतियाँ हुआ करती हैं। हम चाहते हैं कि हमारा जीवन ठीक चले, किन्तु असफलताएँ आ ही जाती हैं। जीवन में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हम सब तरफ से निराशा और परेशानियों से घिर गये हैं। जिधर जाते हैं, आपत्तियाँ-ही-आपत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। अन्धकार-ही-अन्धकार दीखता है। हम एक विषम भूलभुलैया में फंसते जाते हैं ! हमारी विषम परिस्थितियाँ छाया की तरह हमारा पीछा नहीं छोड़ती हैं। सर्वत्र विषाद, पीड़ा और अभाव-ही-अभाव दीखता है।

सच तो यह है कि आज का युग संघर्ष का युग है। भौतिक प्रगति अवश्य हुई है, किन्तु जीवन में सुख, शान्ति, न्याय, तृप्ति, ज्ञान, शुद्धता, निष्ठा, उत्साह, उल्लास, प्रेरणा, आनन्द, प्रकाश, स्वास्थ्य आदि कम होते जा रहे हैं। भय की भावना ने हमें दुर्बलता के गड्ढे में ढकेल दिया है। इन तमाम गुत्थियों का हल हमें उन महा मानवों के अनुभवों से ही मिलेगा, जो उन्होंने अपने विचारपूर्ण ग्रन्थों में लिखे हैं। धर्मग्रन्थ ही वे शुभ प्रेरणाएँ देते हैं जिनमें समस्त समस्याओं का हल मिल जाता है। निराशा के क्षणों में उत्कृष्ट पुस्तकें पढ़िये और आनन्द सुख का मार्ग प्राप्त कीजिये। इसीलिये औपनिषद् ऋषि ने कहा था—**स्वाध्यायान्मा प्रमदः** (स्वाध्याय से—अच्छे ग्रन्थों के अध्ययन से कभी प्रमाद न करो, उसमें आलस्य न करो।)

.....जब संसार में आपके सम्बन्ध खराब हो गये हों, कोई आपका साथ देने वाला न हो, उलझन में कोई रास्ता दिखाने वाला न हो, आप जीवन-युद्ध में लड़ते-लड़ते निराश हो चुके

हों, विवशता से भरी दरिद्रावस्था से ऊँचा उठना चाहते हों, सुखी–संयत और सुव्यवस्थित जीवन जीना चाहते हों, तब किसी हाड़–मांस के आदमी के पास मत जाइये; क्योंकि हो सकता है कि वह आपकी गिरी अवस्था से अनुचित लाभ उठाना चाहे, धोखा दे दे या सही रास्ते बताने के बजाय उल्टे पथभ्रष्ट कर डाले।

भगवान् से भी भीख माँगने पर यदि सांसारिक, मानसिक, आर्थिक, शारीरिक–भौतिक चीजें न मिलें तो अपने कमरे की आलमारी के किसी कोने में रखी हुई शुभ–सात्विक विचारों वाली देवता–सदृश पुस्तकों में से चुनकर एक को निकाल लीजिये। समझिये कि यह पुस्तक आपकी माता, चिरसहचरी, आपके गुरुशिक्षक और ज्ञान का प्रकाश देने वाली एक परमश्रेष्ठ शक्ति है। उसे पढ़ लेंगे तो आपकी दूषित और गिरी हुई मनोवृत्ति बदल जाएगी।

मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक।।

राजनीति के क्षेत्र में भी श्री रामचरितमानस अछूता नहीं है। महामुनि विश्वामित्र जब राजा दशरथ के पास अयोध्या जाते हैं जो दशरथ जी ब्राह्मण समुदाय के साथ उनकी अगवानी करते हैं; क्योंकि विश्वामित्र जी एक ऋषि थे और किसी भी ऋषि–मुनि का स्वागत उसके स्तर के अनुसार विप्र–समाज के साथ किया जाना चाहिये–

मुनि आगवन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा।।

दूसरी ओर जब श्रीराम–लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र जी मिथिलापुरी पहुँचते हैं तो जनकजी अपने सचिव, अनेक योद्धाओं एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ उनका स्वागत करते हैं; क्योंकि राजकुमारों का स्वागत उनकी मर्यादा के अनुकूल होना चाहिये।

संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुरु ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भांति।।

युद्ध और आपत्ति के समय भी श्रीराम राजनीति के आदर्श सिद्धान्तों को नहीं भूलते। रावण के साथ युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व श्री अंगदजी को दूत के रूप में उसके पास भेजकर शान्ति एवं संधि–वार्ता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जिससे नीति का पालन हो सके।

कुछ व्यक्ति श्री रामचरितमानस पर जातिवाद का दोषारोपण करते हुए कहते हैं कि यह अतिब्राह्मणवादी ग्रन्थ है। उनके लिये इतना ही कहना पर्याप्त है कि गोस्वामी जी ने अपने इस ग्रन्थ का नायक एक क्षत्रियपात्र को चुना है और खलनायक एक ब्राह्मण पात्र को; यदि उन्हें जातिवाद का बीजारोपण ही करना होता तो और बहुत से कथानक थे, जिनका चयन वे कर सकते थे; लेकिन उन्होंने तो रावणरूपी मोह का नाश करने के लिये ज्ञान स्वरूप मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को मानस में अवतरित किया; जिस प्रकार भगवान् का अवतार रावणरूपी मोह

का नाश करने के लिये हुआ, उसी प्रकार श्रीरामचरित मानस का अवतार मोह रूपी रावण को मारने के लिये है–

'निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी।।'

रावण को गोस्वामीजी ने विनय–पत्रिका में मोह की संज्ञा दी भी है 'मोह दसमौलि'। जिस प्रकार रावण रूपी मोह को मारने के लिये श्रीराम ने ३१ बाण चलाये थे–

खैंचि सरासन श्रवण लगि, छाड़ेसि सर इकतीस।

ठीक उसी प्रकार मोहरूपी रावण के नाश के लिये तुलसीदासजी ने ३१ का अंक देखते हुए संवत् ३१ की आवश्यकता समझी; तभी तो–

संवत सोलह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।।

अब यह विचारणीय विषय है कि श्रीराम और श्रीरामचरितमानस में कितनी अधिक समानता है।

श्रीरामचरतिमानस मानव–समाज का आधारभूत अंग है। इसकी एक–एक चौपाई मन्त्र है और ये मन्त्र त्रिकाल सत्य हैं। सभी वर्गों के मनुष्यों के लिये इनका अध्ययन उपयोगी है। सत्य तो यह है कि संसार भर की समस्त मानव–जाति के लिये यह परमोपयोगी है, तभी तो कवि रहमी अन्तस्तल से कह उठते है।–

रामचरितमानस विमल, संतन जीवन प्रान।
हिन्दुआन को वेद सम, जवनहि प्रगट कुरान।।

यह अमूल्य ग्रन्थ–रत्न अनुपम समाज–व्यवस्था का संगेबुनियाद है। यह श्रेय–प्रेय दोनों का भंडार है। कर्तव्य–विमुख मानव को 'मानस' कर्तव्य पथ पर लाकर जीवन–संग्राम में विजयी बनाता है। घट–घटवासी हृदय बिहारी सर्वव्यापी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का साक्षात्कार कराना ही इसका लक्ष्य है। श्रीराम चरितमानस को एक सामाजिक महाकाव्य स्वीकार करने में प्रायः किसी को भी सन्देह नहीं होगा। महाकवि तुलसी ने इसके निर्माण में अपना मन्तव्य **'स्वान्तःसुखाय'** घोषित किया है और इसी बात को उन्होंने **'स्वान्तस्तम शान्तये'** के रूप में भी दुहराने की चेष्टा की है। यदि हम उनके 'स्व' को व्यापक मान लें तो मानस की रचना का उद्देश्य होगा–लोक के अज्ञान का विनाश और आन्तरिक सुख की उपलब्धि । तुलसी का **'स्वान्तःसुखाय'** लोकसुखाय के लिये है। अतः मानस का लोकपक्ष सामाजिक है। निराशा की जगह आशा की सुनहरी ज्योति चमकने लगेगी। अन्धकार की जगह प्रेरणा, उत्साह और साहस का शुभ–प्रकाश उदित हो जायेगा। सोया हुआ शौर्य–साहस पुनः नये जोश से जाग्रत हो उठेगा।

परमात्मा की आत्मशक्ति आपकी वह सहायता करेगी, जो कोई हाड़मांस का व्यक्ति नहीं कर सकता। सद्ग्रन्थ जीवन–पथ के प्रकाश–स्तम्भ होते हैं।

धर्मग्रन्थों, उत्कृष्ट साहित्य, प्रेरक पुस्तकों के ज्ञान, विचार, योजना पथ–प्रदर्शन और नयी आशा से आपको अभीष्ट प्राप्त हो जायेगा। विचारपूर्ण पुस्तकें साक्षात् देवता हैं। उनकी प्रतिष्ठा घर–परिवार, दुकान, पुस्तकालयों में रखेंगे तो वे एक न एक दिन अपनी उपयोगिता नये साहस और नयी आशा के रूप में अवश्य सिद्ध करके रहेंगी। वस्तुतः पुस्तकें सरस्वती के भौतिक स्वरूप हैं। उनका स्वाध्याय वस्तुतः सारस्वत सेवा है।

भारतीय तत्वचिन्तकों, संतों और कवियों में तुलसी, सूर, कबीर, नानक, मीरा तथा आधुनिक विचारकों में टाल्सटाय, स्वेटमार्डन, समुएल स्माइल्स, डेल, कार्नेगी, जेम्सएलर, लिलिएजन, राजर्षि विवेकानन्द आदि के ग्रन्थ प्रेरणा दे सकते हैं। जहाँ उत्तम पुस्तकों का सत्संग ऊँचा उठाने वाला है, वहीं कुरुचिपूर्ण अश्लील आवांछनीय और निम्नस्तर की घटिया पुस्तकों का कुसंग नैतिक दृष्टि से नीचे गिराने वाला है। उनसे बचते रहना चाहिये। ऐसे पथ भ्रष्ट करने वाले रोचक बनाये गये साहित्य से भारतीय संस्कृति कुण्ठित ही नहीं, विकृत भी हो सकती है।

निराशा, कुण्ठा, मानसिक वेदना के घुटनभरे जीवन में उत्तम पुस्तकें सुरभित फूलों से महकते सदाबहार बगीचों की सुगन्ध बिखेरती हैं। धर्मग्रन्थ जेब में रखे हुए सुवासित उद्यान ही हैं, जिनमें बैठकर मन शान्त, उत्साहपूर्ण और उल्लसित होता है। विश्व की महान् विभूतियों ने सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से बड़े–बड़े कार्य किये हैं। आप सद्ग्रन्थों के अध्ययन के लिये नियम बना लें और प्रतिदिन गीता, रामायण अथवा अन्य उत्तम पुस्तकें नित्य थोड़ी देर पढ़ें तो उसका प्रत्यक्ष अनुभव आपको आनन्द–सागर में निमग्न करने लगेगा और दुनियादारी की झंझटें अपने–आप किनारा करने लगेंगी।

* * *

स्वार्थमय उपायों एवं अभिप्रायों को पूर्णतः त्याग दो। वे आपको परिच्छिन्न रखते हैं। समस्त वासनाएँ राग हैं। व्यक्तिगत अथवा शरीरगत प्रेम आसक्ति है। उसे भूल जाओ और पवित्र हो जाओ। इससे आपका शरीर स्वस्थ तथा बुद्धि पूर्ण स्वरूप हो जायेगी। अपनी आत्मा में डूब जाना सबसे बड़ा परोपकार है।

क्षमा कर दो

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

क्षमा कर दो क्षमा सागर ! हे करुणा कर ! परम् गुरुवर
न हो अपराध फिर कोई, दया कर दो दया सागर

कार्य कर डाले बड़े, आपकी आज्ञा बिना
ज्ञान का प्रचार किया, पात्र पहचाने बिना
दी लुटा शक्ति यूँ सारी नाम का सुख चाहकर
क्षमा कर दो क्षमा सागर.....

न थामी इन्द्रियाँ अपनी, बनाऊँ दूसरों को क्या
न छोड़ी वासना अपनी, सुधारू दूसरों को क्या
परम पद चाहते–चाहते, लुट गये जग को अपना कर
क्षमा कर दो क्षमा सागर.....

हमें दुःख है नहीं यदि आपसे कुछ दण्ड पाते हैं
यही तो प्रेम है तेरा जिसे बिरले ही पाते हैं।
बना लो दास चरणों का मुझे सद्मार्ग दिखलाकर
क्षमा कर दो क्षमा सागर.....

क्षमा सिन्धु हो तुम गुरुवर, मुझे इतना पता तेरा
हटा ली दृष्टि जो अपनी, ठिकाना फिर कहाँ मेरा
नजर से दूर मत करना, विनय इतनी मेरे प्रभुवर
क्षमा कर दो क्षमा सागर.....

सिद्धासन

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटित कृत्वां दृढं,
विन्यसेन्मेद्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा।
हनुं सुस्थिरम् स्थाणः। संयमितेंद्रियोऽचल दृशा,
पश्येद्भ्रुवोरंतरं ह्येतन्मोक्षकपाट भेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।

अर्थ—गुदा और लिंग इन्द्रियों के मध्य भाग में जो (योनि) स्थान अर्थात् सीमनी है, उससे बायें पैर की एड़ी को मिलाकर और दाहिने पैर की एड़ी को उसी स्थान में लिंग नाल के ऊपर जमाकर और हृदय के समीप छाती पर ठोड़ी को लगाकर सब प्रकार से इन्द्रियों द्वारों को रोककर योगी बिल्कुल निश्चल भाव से अपनी दृष्टि को स्थिर रखकर भ्रकुटी के मध्य भाग को देखता रहता है। और मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठता है। इसको मोक्ष द्वार को खोलने वाला सिद्धासन कहा है।

विधि—मेरूदण्ड को सीधा रखकर बैठ जाओ। अपने बायें पैर की ऐड़ी को गुदा द्वारा के योनि स्थान सीमिनी में रखो और अपने दाहिने पैर की एड़ी को लिंगेंद्रिय के ऊपर रखो और निश्चल भाव से जलंधर बन्ध लगाकर भ्रूमध्य को देखते रहो। अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर बैठ कर रखो। ये सिद्धासन करने की सरल विधि है।

समय—यह आसन जहाँ आसन क्लासों में करायें वहाँ प्रथम अभ्यासी को अपने शरीर बलाबल देख करके एक मिनट से शुरू करें। श्रेणी में क्रमानुसार आधा २ मिनट प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिये और जहाँ अभ्यास समाधि के लिये किया जाये वहाँ पर पहले थोड़ा २–२ मिनट से बढ़ा करके घण्टों तक ले जाया जा सकता है। सिद्धासन का अधिक अभ्यास ग्रहस्थियों को अधिक लाभप्रद नहीं है। किन्तु साधारण अभ्यास में कोई हानि नहीं है।

लाभ—इस सिद्धान्त के गुण इस प्रकार कहे हैं

चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाश्यसेत।
द्वासप्तति सहस्त्राणं नाडीनां मलशोथनम्।
आत्मध्यायी मिताहारी यावद्वादशवत्सरम्सदा।
सिद्धासना श्यामाद्योगी निष्पति माप्नुयात्।।

अर्थात् चौरासी आसनों में से सिद्धासन को मुख्य माना गया है। यह आसन बहत्तर हजार नाड़ियों के मलों को शुद्ध करता है। जो व्यक्ति आत्मध्यान और मिताहारी होकर सदा सिद्धासन

का अभ्यास करता है। वह अवश्य सिद्धि को जाता है। सिद्धासन सभी आसनों के फूलों को देने वाला है। इसमें बिना किसी परिश्रम के मूल बन्ध उड्यान बन्ध और जलन्धर बन्ध तीनों बन्ध स्वाभाविक लग जाते हैं। पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है—

नासनं सिद्ध सदृशं न कुंभः केवलोपमः।
न खेचरीसमा मद्रा न नाद सदृशोलयः।।

अर्थात् सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं है। केवली कुम्भक के समान कुम्भक नहीं है, खेचरी के समान कोई मुद्रा नहीं है। और नाद के समान लयता देने वाला कोई साधन नहीं है। अतः मोक्षभिलाषी साधकों को परमात्मा प्राप्ति के लिए सिद्धासन गृहस्थियों के लिए विशेष उपयोगी नहीं। यह बात सर्वसाधरण रूप से तो भ्रम ही है किन्तु इतना अवश्य है कि ग्रहस्थी तीन–तीन, चार–चार घण्टे नित्य सिद्धासन का अभ्यास करते हैं उनके लिये हो सकता है विशेष लाभदायक न हो क्योंकि योनि स्थान को अन्दर लगाई हुई एड़ी वीर्य वाहिनी नाड़ी को संकुचित करती है और इनके साथ–साथ मूलबन्ध लग जाने के कारण अपान का उर्ध्वाकर्षण होता है ऐसी स्थिति में जो गृहस्थी लोग स्वास्तिक आसन का अभ्यास कर लें, जिसमें उनको कभी भी कोई हानि की सम्भावना हो ही नहीं सकती। स्वास्तिक आसन का स्वरूप बहुत ही सरल है और सभी के लिये पूरा–पूरा लाभदायक है।

जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वापादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वास्तिक तत्प्रचक्षते।।

अर्थात् दोनों जानुओं के बीच दोनों पैरों तलुओं को दबा कर एवं समकाय शिरोग्रीव होकर आनन्दपूर्वक सीधा बैठें। इसी को स्वास्तिक आसन कहते हैं। इसका फल भी प्रायः सिद्धासन के समान ही है। और अभ्यासी व अनाभ्यासी सभी के लिये है।

* * *

ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवर्षि पितृ किन्नराः।
सिद्धचारणयक्षाश्च ह्यन्येऽपि मुनयोजनाः।।

अर्थात्—ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता, ऋषि, पितृ, किन्नर, सिद्ध, चारण, यक्ष और अन्य मुनि लोग भी गुरु की सेवा करते हैं।

ज्ञानयोग का चरम आदर्श

–विवेकानन्द–

जिस प्रकार एक जाति धीरे-धीरे उन्नतिसोपान में अग्रसर होती है, व्यक्ति को भी उसी प्रकार करना होता है। धर्मज्ञान की उच्चतम चूड़ा में आरोहण करने के लिए मानवजाति को जिन सब सोपानों का अवलम्बन करना पड़ा है, प्रत्येक व्यक्ति को भी उसका ही अवलम्बन करना होगा। केवल प्रभेद यह है कि समग्र मानवजाति को एक सोपान से दूसरे सोपान में आरोहण करने के लिए लाख–लाख वर्ष लगे हैं, किन्तु व्यक्तिगण कुछ वर्षों में ही मानवजाति का समग्र जीवन यापन कर ले सकते हैं, अथवा वे और भी शीघ्र, सम्भवतः छः मास के भीतर ही उसे सम्पूर्ण कर ले सकते हैं। किन्तु हममें से प्रत्येक को ही इन सोपानों के माध्यम से जाना होगा। हममें से जो अद्वैतवादी हैं वे जब घोर द्वैतवादी थे अवश्य अपने जीवन के उस अंश की विशेष आलोचना करेंगे। जब ही आप अपने को देह और मन के रूप में सोचते हैं, तब आपको इस स्वप्न का समग्र अंश ही लेना होगा। एक भाव लेने पर ही समग्र लेना होगा। जो व्यक्ति कहता है, इस जगत् का अस्तित्व है, किन्तु ईश्वर नहीं है, वह निर्बोध है, क्योंकि यदि जगत् हो, तो जगत् का एक कारण भी रहेगा और उस कारण का नाम ही ईश्वर है। कार्य रहने पर ही उसका कारण है, यह जानना होगा। जब यह जगत् अन्तर्हित होगा, तब ईश्वर भी अन्तर्हित होंगे। जब आप ईश्वर के सहित अपना एकत्व अनुभव करेंगे, तब आपके पक्ष में यह जगत् फिर नहीं रहेगा। किन्तु जितने दिन यह स्वप्न विद्यमान है, उतने दिन हम अपने को जन्म–मृत्युशील मानकर देखने को बाध्य हैं, किन्तु ज्योंही 'हम देह हैं' यह स्वप्न अन्तर्हित होता है, त्योंही साथ ही साथ 'हम उत्पन्न हो रहे हैं और मर रहे हैं' यह स्वप्न भी अन्तर्हित होगा तथा 'एक जगत् है' यह जो दूसरा स्वप्न है, यह भी चला जायगा। जिसे हम इस क्षण जगत् के रूप में देख रहे हैं, वही हमारे सम्मुख ईश्वर के रूप में प्रतिभासित होगा, एवं जिनको एक दिन हम बहिर्देश में अवस्थित समझते थे, वे ही हमारी आत्मा के अन्तरात्मा रूप में प्रतीत होंगे। अद्वैतवाद की अन्तिम बात है 'तत्वमसि'....वही तुम हो।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग
योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंथाई (एत्मादपुर) आगरा (उ. प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/मुश्री आशंकर भारद्वाज
P-65
सौभाग्य पुरम
[illegible]

वाचा वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तुं न वा शक्यते स्वानन्दामृतपूर पूरित पर ब्रह्माम्बुध्वेर्वैभवम्।
अम्भोराशिविशीर्णवार्षिकशिलाभावं भजन्मे मनो यस्यांशांशलवे विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम्।।

(विवेक चूड़ामणि/४८३)

जलराशि (समुद्र) में पड़कर गले हुए वर्षाकालिक ओलों की अवस्था को प्राप्त हुआ मेरा मन जिस आनन्दामृत समुद्र के एक अंश के भी अंश में लीन होकर अब अति आनन्द रूप से स्थित हो गया है, उस आत्मानन्द रूप अमृत प्रवाह से परिपूर्ण परब्रह्म समुद्र का वैभव वाणी से नहीं कहा जा सकता और मन से मनन नहीं किया जा सकता।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बरहदकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंथाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक—आचार्य ब. (डॉ.) बालेन्दु शर्मा